3205
246

भारतीय गौरव

V44
152H5

62
D.

लेखक
वासुदेव उपाध्याय, एम० ए०
(मंगला प्रसाद पारितोषिक तथा बंगाल हिन्दी मंडल
पुरस्कार विजेता)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भारतीय [illegible]

लेखक

वासुदेव उपाध्याय, एम० ए०

(मंगला प्रसाद पारितोषिक तथा बंगाल हिन्दी मंडल
पुरस्कार विजेता)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

दो शब्द

यदि संसार का प्राचीन इतिहास देखा जाय तो यह सबको स्वतः ज्ञात हो जाता है कि प्राचीन काल में भारतवर्ष सभ्यता की ऊँची चोटी पर पहुँच चुका था। वह संसार का सिरमौर था। जितने देश सभ्य कहे जाते हैं सभी ने इससे सीखा। भारतीय संस्कृति की शिक्षाप्रद कहानी पुस्तकाकार पाठकों के सामने उपस्थित है। इसे मानने में किसी को हिचक न होगी कि सबसे प्राचीन सभ्य देश भारत ही था। किसी भी पहलू से विचार किया जाय यही परिणाम निकलता है कि भारत से किसी की समानता नहीं की जा सकती। पाठकगण पीछे के अध्यायों में इन्हीं बातों का संक्षेप में विवरण पावेंगे। स्थान स्थान पर किसी देश से तुलना की गयी है, परन्तु मुख्यतः अपनी संस्कृति की कथा कही गयी है। सभी बातें संक्षेप में रक्खी गयी हैं, क्योंकि प्रत्येक विषय के लिए एक स्वतंत्र पुस्तक लिखी जा सकती है। इस पुस्तक में विवादपूर्ण बातों का समावेश नहीं किया गया है। इसके पढ़ने से भारत की महत्ता का परिचय मिल जायगा। यह भी ज्ञात हो जायगा कि किन बातों से इसको देवत्व प्राप्त था तथा सुरलोक से भी भारत का जीवन अधिक सुखमय समझा जाता था—

गायन्ति देवा किल गीतकानि
धन्यास्तु ते भारतभूमि भागे।
स्वर्गापवर्गस्य च हेतु भूते,
भवन्ति भूपाः पुरुषाः सुरत्वात् ॥

—लेखक

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

विषय-सूची

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भारत का प्राकृतिक विवरण

संसार में मनुष्य तथा प्रकृति का अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध है। इन दोनों के पारस्परिक क्रिया तथा प्रतिक्रिया का वृत्तांत ही मनुष्य का इतिहास है। मानव का इतिहास प्राकृतिक प्रभावों का अनुसरण करता है। भौगोलिक परिस्थिति मानव इतिहास की प्रेरिका शक्ति है। भारतीय इतिहास का भी प्राकृतिक या भौगोलिक परिस्थिति से गहरा सम्बंध है। भारतीय संस्कृति और ऐतिहासिक घटनाओं का परिवर्तन भौगोलिक कारणों से होता रहा। भारतीय गौरव की अमर कथा को पूर्णतया समझने के लिए इसके प्राकृतिक विवरण पर ध्यान देना परमावश्यक है। इसी भावना को लेकर "सुजलां सुफलां मलयजशीतलां शस्यश्यामलां" की वास्तविकता को प्रमाणित करने के लिए भारत की भौगोलिक परिस्थिति का ज्ञान आवश्यक प्रतीत होता है। उदाहरणार्थ मराठा इतिहास को लीजिए। महाराष्ट्र की पहाड़ी परिस्थिति का प्रभाव उसके इतिवृत्त में सर्वत्र दृष्टिगोचर है। शिवाजी का चरित और उसकी शासन-शैली तो महाराष्ट्र की भौगोलिक बनावट पर ध्यान दिए बिना समझ ही में नहीं आ सकते। दक्षिण भारत में भारतीय संस्कृति का संरक्षण अधिक हो पाया क्योंकि वहाँ की भौगोलिक बनावट ही ऐसी है। भारतीय गौरव को बढ़ानेवाली सारी वस्तुएँ विन्ध्य मेखला से दक्षिण में ही पायी जाती हैं या मध्य-भारतीय जनशून्य स्थानों में सुरक्षित हैं। भारत की ऊंची आध्यात्मिक संस्कृति (culture) का न सही, भौतिक सभ्यता का विकास और जीवन-संग्राम तो भौगोलिक परिस्थिति पर ही निर्भर है।

भारतवर्ष की स्थिति भूमण्डल में बड़े महत्त्व की है। इसी स्थिति के कारण संसार का सभ्य समाज भारतवर्ष से सदा परिचित रहा.

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भारत से दूर के देशों के लोग भारतीय विद्यालयों में शिक्षा ग्रहण करने आते रहे, अनेक जातियाँ बाहरी आक्रमण से बचने के लिए भारत से मित्रता स्थापित करती रहीं। जीवन के आवश्यक पदार्थ इतनी अधिक मात्रा में यहाँ से अन्य देशों को जाते रहे कि भारतवर्ष कर्मभूमि कहलाता था। इन समस्त बातों का यथार्थ ज्ञान लाभ करने के लिए यहाँ के प्राकृतिक साधनों तथा अन्य बातों का जानना आवश्यक है। भारत की स्थिति ठीक जानने के लिए संसार का मानचित्र सामने रखना आवश्यक है। अधिक स्थल-समूह भूमध्य-रेखा के उत्तर में स्थित है। भारत का अंतिम भाग (लंका) इस रेखा से ४०० मील की दूरी पर है। सिर्फ कर्क रेखा भारत के बीचोबीच जाती है (पश्चिम से पूर्व—मालवा से मध्य-प्रान्त, बिहार तथा मध्य बंगाल)। एशिया में भी भारत का स्थान मध्यवर्ती है। प्राचीन समय में प्रधान स्थल मार्गों का प्रारम्भ भारत से ही होता था। इसका प्रमाण अन्य देशों के इतिहास में मिलता है। जलमार्गों में भी भारतवर्ष का स्थान केन्द्रवर्ती है।

भारत एक विशाल देश है। यह हिमालय से लेकर कुमारी अंतरीप (उत्तर-दक्षिण) तथा काठियावाड़ से लेकर बंगाल (पश्चिम-पूर्व) तक विस्तृत है। यहाँ पर हर एक प्रकार की भूमि, जलवायु, पदार्थ, तथा वृक्ष इत्यादि पाए जाते हैं। रचना के अनुसार इस देश को चार प्राकृतिक भागों में विभक्त किया जा सकता है—

(१) हिमालय तथा अन्य पर्वत,
(२) उत्तर भारतीय मैदान,
(३) दक्खिन का पठार, तथा
(४) तंग तटीय मैदान।

हिमालय तथा अन्य पर्वत

एशिया में पामीर की गाँठ से चारों तरफ पहाड़ निकलते हैं। दक्षिण पूर्व में उस पर्वतश्रेणी से एक शाखा जाती है, जिसे हिमालय कहते

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हैं। इसका आकार तलवार के समान है। यह विशाल पर्वत सदा हिम (बर्फ) से आच्छादित रहता है। यह संसार के पहाड़ों से कहीं अधिक ऊँचा है। वास्तव में यहाँ कई पर्वत-श्रेणियाँ हैं। इनके बीच में दुर्गम हिमागार और डरावनी घाटियाँ हैं। भारतवर्ष के उत्तर हिमालय पर्वत ने इस देश को मध्य एशिया से अलग कर दिया है। पश्चिम से पूरब (सिन्धु से ब्रह्मपुत्र तक) इसकी लम्बाई १६०० मील है। गंगा के मैदान से तिब्बत के पठार तक हिमालय की चौड़ाई २०० मील है। मुख्य रूप से हिमालय शब्द का प्रयोग सबसे ऊंचे पहाड़ों की श्रृंखला के लिए किया गया है। किन्तु उस श्रृंखला के नीचे जो छोटे पहाड़ों की परम्पराएँ फैली हैं उन्हें हिमालय की निचली सीढ़ियाँ कहते हैं। वे भी इसीके परिवार में सम्मिलित हैं। चौड़ाई में फैले हुए पहाड़ नीचे से ऊपर तीन भागों में बांटे गए हैं।

तीन श्रेणियाँ

(अ) बाहरी श्रृंखला, (ब) भीतरी श्रृंखला, (स) गर्भ श्रृंखला अथवा उपत्यका। हरिद्वार से देहरादून तक पहाड़ियां, शिवालिक (व्यास व राप्ती तक) और नेपाल तराई की चूड़ियाँ सब बाहरी श्रृंखला के भाग हैं। इस श्रेणी पर कहीं कहीं हाथी तथा दूसरे स्तनधारी जानवरों के पुराने ढाँचे मिले हैं। सम्भवतः यह श्रेणी कभी मैदान का भाग था। यह श्रेणी बालू तथा कंकड़ की बनी है। भीतरी श्रृंखला के पहाड़ गर्भ से अलग हो कर इधर उधर मुड़ जाते हैं और कहीं समानान्तर हो जाते हैं। यह पचास मील चौड़ी है तथा ६००० से १२,००० फुट तक ऊंची है। शिवालिक तथा भीतरी श्रृंखला के बीच में खुले हुए मैदान हैं जिनको पश्चिम में दून कहते हैं तथा पूर्व में द्वार कहते हैं। इसी के बीच में काश्मीर, कांगड़ा, शिमला, गढ़वाल, कुमायूँ, नेपाल आदि हिमालय की प्रसिद्ध और मुख्य बस्तियाँ हैं। भारत के गर्मी के स्थान—मंसूरी, नैनीताल, शिमला, दार्जिलिंग आदि शहर—इसी पहाड़ पर स्थित हैं। इस भीतरी श्रृंखला के सिर पर गर्भ श्रृंखला के पहाड़ दीखते हैं। यह सिन्ध के दक्षिणी मोड़ के अन्दर

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

से प्रारम्भ होती है। यहां सदा हिमरेखा जमी रहती है। इस श्रेणी की औसत ऊंचाई २०,००० फुट है। अधिक चोटियाँ पाँच मील से भी ज्यादा ऊंची हैं। इस शृंखला में नंगा पर्वत, केदारनाथ, बद्रीनाथ, नन्दा देवी, धौलागिरि, गौरीशंकर तथा कांचन-जंघा आदि पहाड़ हैं। इन पर्वतों पर चढ़ने के लिए संसार के विभिन्न देशों से साहसी व्यक्तियों का दल आया। भारत से भी एक गिरोह गया। परन्तु अभी तक कोई भी गौरीशंकर की चोटी पर पहुँच न सका। यह श्रेणी मैदान से १०० मील की दूरी पर है। यह पहाड़ बीच में टूटा हुआ है। उनसे कई नदियों की घाटी के रास्ते बने हैं। भारतवर्ष की मुख्य नदियों में से चिनाब, यमुना आदि हिमालय की गर्भ-शृंखला से निकलती हैं। सतलज, गंगा, घाघरा और कोसी आदि सब ऊपर से उस श्रेणी को काट कर उतरती हैं। इस पहाड़ पर बस्तियाँ नहीं हैं, पर इन नदियों की घाटी आरपार तक आबाद है। हिमालय के पूर्वी भाग में यह श्रेणियाँ बहुत ही पास पास हैं। इसलिए उनके बीच में तंग घाटियाँ हैं। परन्तु पश्चिमी भाग में—काश्मीर में—ये शृंखलाएँ कुछ दूर दूर हो गयी हैं। इनमें चौड़ी घाटियाँ, सुन्दर झीलें और हिमागार बन गए हैं। यही कारण है कि काश्मीर प्रदेश अपनी सुन्दरता के लिए जगत्प्रसिद्ध है। काश्मीर में ये शृंखलाएँ पीर पंजाल, जास्कर तथा कराकोरम के नाम से प्रसिद्ध हैं। इसी कराकोरम श्रेणी के दक्षिण-पश्चिम में कैलाश शृंखला है जो सुप्रसि कैलाश पर्वत के नाम से विख्यात है। यहां पर संसार के सबसे भारी ग्लेशियर रहते हैं।

उत्तरी पूर्वी शाखाएं

हिमालय की बड़ी शृंखला भारत के पूर्वी छोर तक बढ़ गयी है। भारतवासी लौहित्य को पूर्वी सीमा मानते हैं। आसाम (प्राचीन कामरूप) से हिमालय के पूर्वी बढ़ाव ने अपनी एक बांह—पतकोई और नागा—दक्षिण पश्चिम तक फैला दी है। वहां से लुशाई और चटगांव (बंगाल) की पहाड़ियों ने समुद्र तक पैर फैलाया। नागा की एक शाखा—गारो, खंखिया और जयन्तिया

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पहाड़—ने अपनी बाँह भारतीय मैदान में फैला दी है और आसाम में ब्रह्मपुत्र और सुरमा की घाटियों को अलग करती है।

उत्तरी पश्चिमी शाखाएं

हिमालय से पश्चिम में पामीर की दक्खिनी सीमा, हिन्दूकुश पर्वत है। यह हेरात (अफगानिस्तान) तक—कोहेबाबा और बन्देबाबा पर्वतों तक—एक ही शृंखला है। पंजाब के पश्चिम में सुलेमान पहाड़ उत्तर से दक्षिण को चला गया है। तख्त सुलेमान की चोटी ११,३०० फुट ऊंची है। सुलेमान के दक्षिण तथा सिन्ध प्रान्त के पश्चिम में किरथर या हाला पर्वत है। इसकी शाखाएँ समुद्र तक चली गयी हैं। अफगानिस्तान की पूरब तरफ काबुल नदी हिन्दूकुश के सब धाराओं—कुनार, पंजकोटा और स्वात—को सिन्ध में ले जाती है। इस प्रकार भारतवर्ष उत्तर में हिमालय और पूर्वी व पश्चिमी शाखाओं से घिरा है।

मार्ग

हिमालय की श्रेणियों को पार करना कठिन काम है। पहाड़ी प्रदेश के मार्ग अत्यन्त दुर्गम होते हैं। सड़कों के स्थान पर केवल पगडंडियाँ होती हैं। जो मार्ग पहाड़ की रीढ़ पर से होकर जाता है उसके भिन्न भिन्न नाम विभिन्न स्थानों में पाए जाते हैं। उसको अफगानिस्तान में कोतल, कांगड़ा में जोत, कमायूँ में घाटी और तिब्बत मे ला कहते हैं। महाराष्ट्र में भी उस गर्दन के रास्ते को घाट कहते हैं। परन्तु पर्वतों के अन्दर (आरपार) होकर जानेवाले मार्ग को दर्रा कहते हैं। हिमालय में यात्री को बरफ काट कर मार्ग बनाना पड़ता है। नदियों की गहरी घाटियों को पार करने के लिए रस्से का पुल (लक्ष्मण झूला लोहे का पुल है) बनाना पड़ता है। यह सबको विदित है कि सीमांत के रास्तों का देश के इतिहास पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। हिमालय में पूरब, उत्तर, उत्तर-पश्चिमी तथा पश्चिमी भागों में दर्रे हैं। आसाम तथा बंगाल से जानेवाले मार्ग को पूरब का दर्रा कहते हैं। इनमें चिन्डविन घाटी तथा मणिपुर के मार्ग से भारत तथा चीन में व्यापारिक सम्बन्ध था। आसाम के इतिहास में इसके अनेक प्रमाण मिलते हैं जिनसे ज्ञात होता है कि ईसा

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

के पूर्व २०० वर्ष से चीन से भारत का आना जाना इस मार्ग से होता रहा। चुम्बीघाटी से होकर तिब्बत में सदा लोग जाते रहे। व्यापार भी होता रहा। मंगोलिया से मंगोल जाति ने भी इस मार्ग से भारत पर आक्रमण किया। बर्मा के निवासियों में मंगोल की प्रधानता ज्ञात होती है। मध्यकाल में भी तिब्बत के पठार से चीन व तिब्बती जातियों की बाढ़ उतरी। शान उनमें मुख्य थे। बर्मा में शान रियासत का नाम उसीसे पड़ा। चीन जाति इन्हीं सीमांत के रास्तों द्वारा सुरमाघाटी से हिमालय के उत्तरी छोर तक पहुँचती रही। उत्तरी भाग में तिब्बत से सदा सम्बन्ध रहा। श्रीनगर (काश्मीर) से लेह (लदाख) और करा कोरम दर्रे से पश्चिमी तिब्बत में जाते हैं। शिमला से आगे सतलज की कन्दरा से ऊपर दर्रा है। तिब्बत में सभ्यता पीछे फैली है। बुद्धधर्म का संदेश भी इन्हीं दर्रों से होकर तिब्बत को गया। भारत में उत्तरी पश्चिमी दर्रों का बड़ा महत्त्व है। सीमांत प्रदेश से होकर खैबर का दर्रा है। इसी मार्ग से भारतवर्ष में आर्य लोग आए (यदि उनका आदिस्थान मध्य एशिया माना जाय)। सिकन्दर महान् तथा उससे पूर्व जरजेस भी इसी मार्ग से सेना लेकर भारत के प्रांत पंजाब में आए। अशोक ने इसी मार्ग से अपने दूत को यूनान और मिश्र भेजा। इसलाम की सेनाओं ने इसी पहाड़ी मार्ग से होकर भारत में प्रवेश किया। अतएव इसकी प्रधानता सदा से रही। आजकल भी इस मार्ग की रखवाली की जाती है। लांडीखाना में किला तथा फौज का समारोह है। काबुल में दक्षिण कुर्रम और नटोची के दर्रे हैं। ये व्यापार की दृष्टि से महत्त्व-पूर्ण हैं। गोमल का रास्ता भी हिमालय के उत्तरी-पश्चिमी पहाड़ों में स्थित है। अब तो खैबर से भी गोमल की महत्ता बढ़ गयी है। यह गजनी (अफगानिस्तान) के सामने है। इसके मुंह पर डेरा इस्माइल खां शहर है। इसके नीचे बोलन का दर्रा है। क्वेटा शहर से इसकी फौजी नाका-बंदी की गयी है। इसके द्वारा पठान जाति का मूल घर—झोवघाटी—अफगानिस्तान के पठानों से कट गया है। बोलन से क्वेटा और खोजक

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जोत होकर कन्दहार और वहाँ से हेरात (अफगानिस्तान) का रास्ता है। ब्रिटिश रेलपथ वहाँ से सीधा ईरान के पश्चिमी सीमा तक पहुँच गया है। सम्राट दारयवहु ने इसी दुर्गम मार्ग से भारत पर आक्रमण किया था। ईसा की पहली शताब्दी में शकों का आक्रमण इन्हीं पश्चिमी मार्गों से हुआ था।

हिमालय में प्रधान श्रेणी पर हिमरेखा सदा रहती है, अतएव उसी गर्भ-शृंखला या उससे उत्तरी भाग से ही नदियाँ निकलती हैं। इसकी प्रधान शृंखला के उत्तरी ढाल से सिन्ध और उसीके पास से ही सतलज, घाघरा और ब्रह्मपुत्र निकलते हैं। मानसरोवर झील की स्थिति भी उसी स्थान पर है। सिन्ध और सतलज की तरह चिनाब तथा व्यास भी समीप में हैं। गंगा नदी मध्यवर्ती श्रेणी से गंगोत्री से निकलती है। जमुना की मुख्य धारा जमनोतरी से प्रारम्भ होती है। इसके तथा सतलज की पूर्वी धारा के बीच में बंदरपूछ पर्वत है। उसके पूर्व गढ़वाल प्रदेश में गंगा की सब धाराएँ (अलकनन्दा, भागीरथी आदि) हैं। भागीरथी का श्रोत हिमालय की गर्भ-शृंखला में तथा जाह्नवी पीठ पीछे है। अलकनन्दा की दो धाराएँ, धौली गंगा तथा विष्णु गंगा, एक स्थान जोशी मठ पर मिली हैं। वह घाटी हिमालय के ठीक गर्भ में है। वहीं बदरिकाश्रम की घाटी है। रामगंगा और कोसी गंगा के पूर्वी भाग के नीचे से निकलती हैं। अलमोड़ा की बस्ती कोसी की घाटी के ऊपर है। सरयू नाम की एक नदी काल्पी से मिली है। जस्कर शृंखला से घाघरा का स्रोत गंगा के ऊपर है। दो सौ मील तक घाघरा का क्षेत्र है। इसकी धाराओं में से धौलीगंगा और गौरीगंगा तथा स्वयं काल्पी भी हैं। घाघरा की घाटी होकर कैलाश मानसरोवर की यात्रा की जाती है। धौलागिरि तक नैपाल राज्य का पश्चिमी भाग है। धौलागिरि से नीचे राप्ती का श्रोत है। यहां से गोसाईं थान तक गण्डक की धाराएं फैली हैं। नेपाल के उत्तर पूर्वी छोर पर कांचनजंघा है। उसके पूरब हिमालय

हिमालय का पानी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

का पानी गंगा के बजाय ब्रह्मपुत्र में जाता है । ब्रह्मपुत्र में अनेक धाराएँ हैं । मनास उसमें प्रधान है जो हिमालय के गर्भ-शृंखला से निकली है । इस नदी की घाटी होकर तिब्बत को रास्ता गया है । इस प्रकार हिमालय भारतवर्ष की मुख्य नदियों का श्रोत है ।

पैदावार और वन-सम्पति

हिमालय के हिमागार में तो कोई वनस्पति नहीं होती परन्तु नीचे उतर कर हिमालय पर कोणधारी वृक्षों के जंगल मिलते हैं जिनमें चीड़ और देवदार के पेड़ अधिकता से पाए जाते हैं । बाहरी शृंखला पर टीक तथा साल के वृक्ष पाए जाते हैं । यहाँ पर भाभड़ या सवई नामक घास पैदा होती है जो कागज बनाने के काम आती है । इनके अतिरिक्त शिवालिक की घाटियों में नेपाल व आसाम तक धान पैदा किया जाता है । काश्मीर तथा कुमायूं के भागों में सेव, अंगूर, अनार, अखरोट, बादाम व खुमानी आदि फल भी पैदा होते हैं । दवा-सम्बन्धी अनेक प्रकार की जड़ी-बूटी भी हिमालय में पैदा होती है । यही कारण है कि संसार में गंगा का पानी सबसे अधिक वैज्ञानिक बतलाया गया है । इनके अलावा खनिज पदार्थ भी हिमालय में अधिकता से पाए जाते हैं । भारत में सोना सिन्ध नदी के रेत में छोटे छोटे कणों के रूप में मिलता है । नैपाल तथा काश्मीर की घाटियों में पीट और कांगड़ा (हिमालय) में स्लेट बहुतायत से पैदा होता है । सिकम तथा गढ़वाल में ताम्बा पाया जाता है । उत्तर भारत में हिमालय से नमक और लद्दाख से सुहागा व गंधक निकाला जाता है । इसके अतिरिक्त पश्चिमी तथा पूर्वी शाखाओं (आसाम आदि) में कोयला तथा तेल निकाला जाता है । हिमालय से जिन नदियों में जल का प्रपात है (जैसे व्यास) उनमें सफेद कोयला (white coal) पैदा किया जाता है । इस प्रकार हिमालय वनस्पति तथा खनिज पदार्थों का भी घर दिखाई पड़ता है । संक्षेप में कहा जा सकता है कि हिमालय से भारतवर्ष को अनेक लाभ हैं । मानसून हवा को रोक कर पानी बरसाना तथा उत्तरी ठंढी हवा को न आने देने का महत्त्वपर्ण कार्य भी हिमालय ही करता है ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

बाहरी शत्रुओं के आक्रमण को भी वह यथासम्भव रोकता है। वनस्पति का घर और नदियों का उद्गम-स्थान हिमालय है जिसके कारण भारत सुहावना तथा हरा-भरा दिखलाई पड़ता है। इसमें भारतीयों के लिए स्वास्थ्यवर्द्धक स्थान भरे पड़े हैं।

उत्तर भारतीय मैदान

हिमालय के दक्षिण तथा उत्तरी मैदान के बीच के भाग को भावर कहते हैं। जहाँ पर हिमालय की श्रेणियों का आरम्भ होता है वहीं पर असंख्य धाराएँ कंकड़ पत्थर का ढेर एकत्रित कर देती हैं। इस तरह का पथरीला ढाल एक सिरे से दूसरे सिरे तक फैला हुआ है। छोटी छोटी नदियों का पानी इस कंकड़ के अन्दर छिप जाता है। इसलिए इस भाग में बड़े बड़े पेड़ तो नजर आते हैं परन्तु खेती और आबादी के लिए यह स्थान व्यर्थ है। भावर की पृथ्वी मैदान में मिल जाती है। यहाँ पर भीतर का पानी ऊपर की ओर उठ जाता है। यह स्थान दलदली हो जाता है। ऊंची घास तथा पेड़ घने हो जाते हैं। इस भाग को तराई कहते हैं। इसमें पीलीभीति, बहराइच, बस्ती, गोरखपुर और चम्पारण के जिले शामिल हैं। तराई का प्रदेश रोगग्रस्त है। यहाँ पर आजकल धान तथा गन्ना की फसल अच्छी होती है। भारतवर्ष में गन्ना से शक्कर अधिकतर इसी भाग में तैयार किया जाता है। तराई के जिलों में शक्कर के मिल अधिकता से पाए जाते हैं।

उत्तरी मैदान

उत्तर भारतवर्ष एक विस्तृत समथर मैदान है। इसी मैदान के पश्चिमी भाग (पंजाब, संयुक्त प्रांत) का नाम प्राचीन समय में आर्यावर्त या ब्रह्मावर्त था। आर्य लोगों ने सर्वप्रथम यहीं निवास करके वेदों की रचना की। इसी मैदान में भारतीय प्राचीन भग्नावशेष मिले हैं जिन पर इतिहास का निर्माण होता है। खुदाई के कारण उन खण्डहरों का

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पता चला है जहाँ प्राचीन समय में आर्य लोग निवास करते थे। सभ्यता का उदय पहले पहल गंगा-सिन्ध की घाटी में ही हुआ। "प्रथम प्रभात उदय तव गगने, प्रथम सामरव तव तपोवने" का उल्लेख इसी भाग के लिए किया गया है। अनेक ऐतिहासिक प्रसिद्ध स्थान—महेन्जुदारो तथा हरप्पा, मथुरा, सारनाथ, पाटलिपुत्र, और नालंदा—इसी भाग में स्थित हैं। इस विशाल मैदान को नदियों के दो जल सींचते हैं—सिन्ध तथा गंगा। यही कारण है कि उत्तर भारतीय क्षेत्र को सिन्ध-गंगा का मैदान कहते हैं। दोनों पानियों का निकास प्रायः एक ही स्थान से है। परन्तु मैदान में आकर दोनों नदियां अलग अलग हो जाती हैं। इसका कारण यह है कि दिल्ली के समीप की भूमि २,००० फुट ऊंची है और जल-विभाजक का काम करती है। यह भाग सूखा है। यही महाभारत के समय का कुरुक्षेत्र है जहाँ पर महाभारत संग्राम हुआ था। उस भूमि का फैलाव इतना पर्याप्त है कि मध्यकाल में भी युद्ध इसी भूमि पर हुए। इसे पानीपत का मैदान कहते हैं। बाबर, अकबर तथा बालाजी बाजीराव (पेशवा) इसी स्थान पर लड़े। यह मैदान हिमालय से लाई हुई मिट्टी से बना है। सिन्ध प्रांत से आसाम तक इसमें शामिल है। इसके दक्षिणी भाग में फिर से विन्ध्या की पहाड़-श्रेणियाँ स्थित हैं। मैदान से तीन मार्ग दक्षिण की ओर जाने के लिए उपयुक्त हैं। इन्हीं तीनों मार्गों से होकर दक्षिण भारत पर उत्तर से आक्रमण होते रहे। इन स्थानों पर सैनिक संरक्षण के लिए किले बनवाए गए थे। दिल्ली का किला, फतेहपुर सिकरी तथा चुनार (संयुक्त प्रांत) तथा इलाहाबाद के किले जीवित उदाहरण हैं। आजकल भी रेल का मार्ग दक्षिण भारत के लिए इन्हीं रास्तों से होकर निकाला गया है।

मैदान नदियों की लाई हुई मिट्टी से बना है। इसकी गहराई प्रायः एक हजार फुट है। मैदान की चौड़ाई १०० मील से ज्यादा है। इस विशाल मैदान में कंकड़ को छोड़कर पत्थर का नाम नहीं है। मिट्टी मुलायम है। ऊंचे भाग को बांगर कहते हैं। नए नीचे भाग को खादर

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

या कछार कहते हैं। गंगा सिन्ध का डेल्टा खादर का ही अंग है। जल-विभाजक से सिन्ध तथा गंगा का ढाल पृथक हो गया। सिन्ध पश्चिमी तिब्बत से निकलता है। गिलगिट के पास दक्षिण-पश्चिम को मुड़ जाता है। पंजाब का बड़ा भाग नदियों द्वारा बना कछारी मैदान या दोआबा है। काबुल और स्वात नदियों के द्वारा हिन्दूकुश का पानी अटक के पास सिन्ध नद में आता है। झेलम, चिनाब, रावी, व्यास और सतलज से पूरा प्रांत सींचा जाता है। नदियों के पास खादर की जमीन अच्छी नहीं है। बाँगर की जमीन उपजाऊ है। अतः दोआबा की उपजाऊ जमीन में नहरें निकाली गयी हैं। यहां के अधिकतर लोग खती करते हैं, डील-डौल में लम्बे तथा मजबूत होते हैं। फौज में अधिक संख्या में ये लोग भरती किए जाते हैं।

पूर्वी भाग में मुख्य नदी गंगा है। इसकी लम्बाई १५५० मील है। आरम्भ में यह भागीरथी कहलाती है। टेहरी से नीचे अलकनन्दा मिलती है। हरिद्वार से गंगा नामकरण होता है। यहीं से यह मैदान में प्रवेश करती है। इसका मार्ग पूरब की ओर होता है। राजमहल की पहाड़ियों से यह दक्षिण की ओर मुड़ती है। ग्वालंदो (बंगाल) के पास ब्रह्मपुत्र इसकी एक शाखा पद्मा में मिलता है। इसके पश्चात् गंगा की अनेक धाराएँ हो जाती हैं जो सुन्दरबन का डेल्टा बनाती हैं। इसकी मुख्य धाराओं में मेघना, पद्मा तथा हुगली हैं। गंगा नदी मैदान में बहती हुई अपनी शाखाएँ भी साथ लेती चली आती है। दाहिने किनारे की मुख्य सहायक नदियों में यमुना तथा सोन हैं। रामगंगा तथा गोमती बायीं ओर से गंगा में मिलती हैं। घाघरा नदी भी सतलज, सिन्ध तथा ब्रह्मपुत्र की तरह हिमालय के उसी स्थान से निकलती है। घाघरा में नेपाल के बाहर सारदा तथा राप्ती बाईं ओर से मिलती हैं। गंडक भी एक सहायक नदी है। नागपुर के पठार से दामोदर भी हुगली में मिल जाती है। गंगा की सबसे बड़ा सहायक नद ब्रह्मपुत्र है। यह १८०० मील लम्बा है। यह मानसरोवर के पूर्व में कैलाश से निकलता है। यह नद पर्वत में

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

विहांग कहलाता है। यह आसाम में ४५० मील तक ठीक पश्चिम की ओर बहता है और ग्वालंदो के पास गंगा की शाखा में मिल जाता है। इस ार इस मैदान में नदियों का जाल बिछा है।

पैदावार

उत्तरी मैदान पैदावार के लिए संसार-प्रसिद्ध है। पंजाब में सुन्दर गेहूं और बिहार, बंगाल में धान और जूट पैदा होते हैं। यही कारण है कि बंगाल में जूट के मिल अधिकता से पाए जाते हैं। संसार में जूट का सबसे ज्यादा भाग बंगाल में ही पैदा होता है। दामोदर नदी की घाटी में कोयला तथा लोहा की बहुत बड़ी खान है। खेती की सुगमता तथा खनिज पैदावार की अधिकता से यह भूमि स्वर्ग की तरह सुख देनेवाली है। यही कारण है कि भारतवर्ष पर सदा से शत्रुओं का आक्रमण होता रहा। इसी स्वर्गभूमि में देवता भी रहना चाहते थे। ईसा के पूर्व से ही सिकन्दर ने इसे अपनाने का प्रयत्न किया। इस्लाम धर्म के माननेवालों ने बाहर से आकर इसे जीत कर भोग किया और उस समय से विदेशी इस पर शासन करते आ रहे हैं। संसार में इस मैदान की आबादी अधिक समझी जाती है। ५०० से ८०० तक जनसंख्या प्रति वर्गमील में निवास करती है। चीन ही एक ऐसा देश है जो इतना घना आबाद है। यहाँ पर रेल का जाल बिछा हुआ है।

मार्ग

नदियां भी व्यापार में सहायता पहुँचाती हैं। इस मैदान में राजपथ पश्चिम से पूरब को लम्बान में चलता है। प्राचीन समय में भी यहाँ सुरक्षित व्यापार होता था। राजमार्ग को शेरशाह ने मरम्मत करा कर ग्रैण्ड ट्रंक रोड पेशावर से कलकत्ते तक तैयार करा दिया। इन्हीं रास्तों से होकर भारतीय सामग्री खैबर को पार कर अफगानिस्तान, ईरान और टर्की होते योरप में बिकने जाती थी। यदि इतिहास के पृष्ठों का अवलोकन किया जाय तो इसकी विशेषता ज्ञात हो जायगी। यही नहीं, यहाँ से जलमार्ग के स्थानों पर—भरौंच (काठियावाड़) तथा ताम्रलिप्ती (बंगाल) बन्दरगाहों पर—व्यापार की सामग्री भेजी जाती। वहाँ से जहाजों पर लद कर वह बिकने को

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

विदेश जाया करती थी। आजकल भी इस मैदान की विशेषता के ही कारण योरप से वायुमार्ग उत्तरी मैदान होकर ही पूर्व (चीन, जापान व आस्ट्रेलिया) को जाता है। सिन्ध से (करांची, दिल्ली, बमरौली, दमदम) बंगाल का वायुमार्ग प्रधान और महत्त्वपूर्ण हो गया है।

दक्षिणी पठार

उत्तर भारतीय मैदान से भारत के तिकोने दक्षिणी भाग को दक्खिन का पठार कहा जाता है। विन्ध्य मेखला इन दोनों को अलग करती है। ऐतिहासिक युग के प्रारम्भ से (ई० पू० ६०० वर्ष) दक्षिण भारत में उत्तर से लोग आते जाते रहे। सम्राट् अशोक ने अपने धर्म का प्रचार लंका तक किया। गुप्त नरेशों म महाराजाधिराज समुद्रगुप्त ने दक्षिण भारत का दिग्विजय किया था। लंका से उसके दरबार में लोग आते रहे। प्राचीन भारत में उत्तर तथा दक्षिण भारत में आना जाना पर्याप्त मात्रा में होता था। मध्यकाल में भी सबसे प्रथम अलाउद्दीन खिलजी ने दक्षिण पर आक्रमण किया। मुहमद तुगलक़ ने भी देवगिरि को अपनी राजधानी बनाया। मुगल लोगों के समय में तो अकबर से औरंगजेब तक लड़ाइयां होती रहीं। जैसा कहा गया है यह त्रिभुज पहाड़ी पठार ह। इसका आधार विन्ध्याचल तथा दो भुजाएँ पूर्वी ओर पश्चिमी घाट हैं। पश्चिमी घाट का पुराना नाम सह्याद्रि था। पश्चिमी घाट पूर्वी घाट से ऊंचा है। इसलिए पठार की ढाल पूरब को है। इस पहाड़ी ढाल में खुले मैदान को महाराष्ट्र लोग 'देश' कहते हैं। सह्याद्रि के पश्चिम तरफ़ के किनारे को कोकण कहते हैं। इन दोनों के नाम पर महाराष्ट्र के ब्राह्मण देशस्थ तथा कोकणस्थ कहे जाते हैं। सह्याद्रि में तीन रास्ते हैं। पहला थाल घाट जिस से होकर दिल्ली से बम्बई को गाड़ी आती है। दूसरा भोर घाट जिसके द्वारा बम्बई से मद्रास की ओर जी. आई. पी. रेलवे जाती है। तीसरा पाल जिसमें होकर मद्रास से कालीकट को रेल गयी है। सह्याद्रि के घाटों से तथा मराठा इतिहास से घनिष्ठ सम्बन्ध

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

है । इन तंग मार्गों से किसी प्रकार की गाड़ी या छकड़े नहीं जा सकते । क्षत्रपति शिवाजी ने 'कोकण' से 'देश' जानेवाले मार्गों पर अपना अधिकार कर लिया था तथा किलाबंदी कर दी थी । सीधे खड़े होने के कारण ये किले बिल्कुल सुरक्षित थे । पूरब से शत्रुओं के घोड़े तथा सैनिक इन कठिन मार्गों पर विजय प्राप्त नहीं कर सके । युद्ध में मराठा फौज उन पर छापे मारती रही । उसने गोरिला युद्ध के तरीके को अपनाया । यही कारण था कि शिवाजी विजयी रहा । उसके रास्ते को छोड़ देने से ही मराठे नष्ट हो गए ।

पूरे पठार को देखने से ज्ञात होता है कि विन्ध्या का सिलसिला महादेव अमरकंटक पर्वतों से होते राजमहल की पहाड़ियों (बिहार) तक चला गया है । विन्ध्या के उत्तर में मालवा का सूखा पठार है । दक्षिण पठार में नदियों की घाटियों तथा डेल्टा के सिवाय समस्त भूमि कठोर चट्टान (hard rocks) की बनी है । उत्तर-पश्चिमी भाग में काली मिट्टी (बरार प्रान्त) दिखलाई पड़ती है जिसमें रूई बहुतायत से पैदा होती है । विन्ध्या के उत्तर तथा दक्षिण भाग को सम्मिलित करने से पठार का विवरण पूरा हो सकता है । सह्याद्रि की ढाल पूरब को होने से नदियां दक्षिण-पूरब को बहती हैं और पूर्वी घाट को काट कर बंगाल की खाड़ी में गिरती हैं । गोदावरी नासिक के पास पश्चिमी घाट से निकलती है । बाएं किनारे पर वेन गंगा तथा वर्धा नामक नदियां इसमें मिलती हैं । कृष्णा भी महाबालेश्वर के पास निकलती है । भीमा और तुंगभद्रा भी अपना पानी इसमें गिराती हैं । इसी प्रकार कावेरी तथा वैगई आदि नदियां बंगाल की खाड़ी में गिरती हैं । पठार के उत्तरी भाग में नर्मदा अमरकंटक पहाड़ से निकलती है, और मध्य प्रांत में बहती हुई, विन्ध्या तथा सतपुड़ा के बीच से होकर अरब सागर में गिरती है । इसकी घाटी में जबलपुर के पास संगमरमर का पहाड़ और जलप्रपात देखने योग्य है । इसके किनारे अनेक तीर्थस्थान हैं । गंगा की तरह यह भी पवित्र नदी मानी जाती है । सतपुड़ा के दक्षिणी भाग में होकर

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ताप्ती नदी खम्भा की खाड़ी में गिरती है। अमरकंटक की ढाल चारों तरफ को है। इसलिए उत्तर में सोन, पश्चिम में नर्मदा, दक्षिण मे वर्धा तथा पूरब में महानदी निकलती हैं। इतनी नदियों के होते हुए भी पठार में हरियाली दृष्टिगोचर नहीं होती।

नदियों की घाटियों में थोड़ा धान तथा 'देश' में मकई, ज्वार, बाजरा आदि कुधान्य पैदा होता है। मूँगफली की भी खेती होती है। खानदेश तथा बरार में कपास अधिक पैदा होता है। पूरबी तथा पश्चिमी घाट के मिलाप को नीलगिरि पर्वत कहा जाता है। वहाँ कहवा तथा चाय पैदा होती है। खानों की उपज में तो दक्षिणी पठार अत्यन्त धनी है। प्राचीन काल से ही गोलकुण्डा के हीरे की खानें प्रसिद्ध हैं। कोल्हार की खान से भी सोना निकाला जाता है। संसार का पाँच फी सदी सोना यहाँ निकलता है। मैसूर राज्य के बाबा बूदन पहाड़ी से लोहा निकाला जाता है। हैदराबाद राज्य से काफी कोयला खोदा जाता है। सफेद कोयले (white coal) की सम्पत्ति भी कम नहीं है। बम्बई तथा पूना के बीच की ढाल पर झील तैयार कर के ताता की हाइड्रो-इलेक्ट्रिक स्कीम चलती है जिससे तमाम कारखानों, रेलवे तथा शहरों में रोशनी और ताक़त (शक्ति) दी जाती है। मद्रास में पायकारा तथा मैसूर में कावेरी स्कीम भी सफेद कोयला पैदा करती है। इस प्रकार भारतवर्ष की व्यावसायिक उन्नति में दक्षिण पठार की शक्ति तथा खनिज सम्पत्ति विशेष सहायक है।

प्राचीन काल में पठार के उत्तर-पश्चिम में व्यापार के प्रधान मार्ग थे। ये नर्मदा की घाटी से होकर चलते थे। पुराने समय में भरोंच से पाटलिपुत्र तक बड़ा व्यापार चलता था। इस मार्ग में उज्जयिनी केन्द्र थी। पेरिप्लस ने इस रास्ते की प्रशंसा की है। 'किताबुल मसालिक' नामक पुस्तक में अरब तथा भारत के व्यापार-सम्बन्धी वर्णन में इस मार्ग का उल्लेख है। दक्षिण भारत के अन्दर सेना, व्यापार तथा सभ्यता का प्रवाह नदियों के दिशा में होते रहे। मनमाड़ से पूर्वी किनारे

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मछलीपट्टम तक का मार्ग गोदावरी के सहारे जाता है। पूना से कांजी-वरम का मार्ग भी कृष्णा के सहारे जाता है। यही कारण है कि पुराने समय में शक्तिशाली राज्यों के स्थान तथा राजधानी इन्हीं मार्गों से सम्बन्धित रहीं। आजकल इन्हीं मार्गों से होकर रेलें जाती हैं।

तटीय प्रदेश

पश्चिमी तथा पूर्वी घाट से लेकर भारतीय समुद्र के किनारे तक स्थल भूमि है जो समुद्र के किनारे के मैदान के नाम से प्रसिद्ध है। भारत का सामुद्रिक किनारा कटा फटा नहीं है। किनारा सपाट होने के कारण पश्चिमीय विद्वानों की यह भ्रम-पूर्ण धारणा रही कि भारत में कभी भी नाविक शक्ति या जलशक्ति (navy) न थी। परन्तु यह धारणा असत्य है। डा० कुमारस्वामी ने पूर्ण रूप से अपनी पुस्तक Art and Craft in India में सिद्ध कर दिया है कि जहाज बनाने की प्रथा भारत में अत्यन्त प्राचीन समय से प्रचलित थी। बड़े जहाज में बैठ कर भारत के लोग व्यापार करने मैडागास्कर, अरब, पूर्वी द्वीपसमूह तथा लंका तक जाया करते थे। टालेमी तथा मैक्रीन्डल ने साफ तौर से लिखा है कि भारत के पश्चिमी किनारे पर सामुद्रिक व्यापार मिश्र तथा रोम से हुआ करता था। गुप्त सम्राटों के समय में चीनी यात्री फाहियान ने अपनी अन्तिम यात्रा जहाज द्वारा समाप्त की। वह ताम्रलिप्ति (बंगाल) से जहाज में बैठ कर लंका (सिंहल), जावा, सुमात्रा (स्वर्णद्वीप) होते चीन को वापस गया। जावा द्वीप के इतिहास में भी ऐसे उल्लेख मिले हैं जिसमें गुजरात के एक राजकुमार का वर्णन मिला है जो पाँच बड़े जहाजों में हजारों मनुष्यों के साथ जावा पहुँचा। इन सब बातों से सिद्ध होता है कि प्राचीन भारत में सामुद्रिक व्यापार अच्छे पैमाने पर था। मध्यकाल में शिवाजी तथा हैदर अली के पास भी जहाजी बेड़ा था।

पश्चिमी किनारा ताप्ती के मुहाने से लेकर कुमारी अन्तरीप तक फैला हुआ है। इस किनारे की भमि तंग है और तीस से चालीस मील

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

चौड़ी है। पहाड़ से छोटी-छोटी नदियां शीघ्र ही समुद्र में गिर जाती हैं। वे मिट्टी लाकर मैदान में बिछा देती हैं। मानसून से पानी भी बहुत बरसता है। अतः यहाँ पर पैदावार में धान की अधिकता है। बीच में नारियल और सुपारी भी होती है। पहाड़ों पर सागौन की लकड़ी तैयार होती है। रबड़ के पेड़ भी यहाँ पाए जाते हैं। किनारे के उत्तरी भाग को कोकण तथा दक्षिणी भाग को मालाबार कहा जाता है। इस भाग में कुछ द्वीपसमूह भी हैं। बम्बई नामक द्वीप पर बम्बई शहर बसा हुआ है। इसके समीप ही एलिफेन्टा नाम का एक द्वीप है जहाँ के पहाड़ में चट्टान काट कर मंदिर तथा मूर्त्तियाँ बनायी गयी हैं। यहाँ से दूर इस किनारे पर गोआ नाम का बन्दरगाह है जो पुर्तगाली लोगों के अधीन है।

पूर्वी किनारे के मैदान की हालत इसके प्रतिकूल है। यह गंगा के मुहाने से लेकर सुदूर दक्षिण तक फैला हुआ है। किनारे का नाम कारोमण्डल है, परन्तु भूमि को करनाटक कहते हैं। पश्चिमी तथा पूर्वी तटीय प्रांत को मिलानेवाली मनार की खाड़ी है। यह मोतियों तथा शंख के लिए प्रसिद्ध है। मोतियों को गोताखोर समुद्र से निकालते हैं। इसीके समीप ही रामेश्वर का पुल है जिसको रामचन्द्र ने लंका विजय के लिए तैयार कराया था। पूर्वी किनारे की भूमि प्रायः तीन सौ मील तक चौड़ी है। यहाँ पर सब नदियों—गोदावरी, कृष्णा, कावेरी आदि—का मुहाना है। गर्मी का दिन सूखा रहता है। जाड़े में उत्तरी पूर्वी मानसून से पानी बरसता है। भूमि उपजाऊ है। वर्षा की कमी से सिंचाई का प्रबंध किया गया है। पेरियर प्राजेक्ट से सिंचाई का विचित्र आयोजन है। पश्चिमी घाट का पानी सुरंग द्वारा मद्रास प्रांत में लाया जाता है। दस लाख एकड़ जमीन की सिंचाई होती है। धान की प्रधान फसल है। कपास, मूंगफली, गन्ना तथा तम्बाकू भी पैदा होते हैं। पहाड़ों की ढालों पर टीक तथा चन्दन के वृक्ष पाए जाते हैं। समुद्रतट पर नमक निकाला जाता है तथा मछली मारी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जाती है। इस किनारे की आबादी घनी है। प्रायः चार सौ मनुष्य प्रति वर्गमील में निवास करते हैं। किनारे पर अच्छे अच्छे बन्दरगाह हैं। मद्रास के दक्षिण में पांडेचेरी का स्थान फ्रांसीसियों के हाथ में है। धनुषकोटि होकर लंका जाते हैं।

प्राचीन तथा मध्य काल में स्थल ही की विशेषता थी। शत्रु का आक्रमण पंजाब पर सर्वप्रथम होता रहा। परन्तु योरपवालों के आने के समय से सामुद्रिक तटीय प्रदेश की महत्ता बढ़ गयी। किनारे की भूमि पर ही प्रथम प्रभुत्व जमाया गया। करनाटक के लिए बहुत बड़े युद्ध हुए। पूर्वी तथा पश्चिमी किनारे की भूमि और प्रान्तों को अधिकार में करने के बाद अंत में पंजाब को अंग्रेजी राज्य में मिलाया गया। समय के परिवर्त्तन तथा योरपीय सामुद्रिक शक्ति के कारण ऐसी घटना हुई। मद्रास तथा कलकत्ते में किले बनवाए गए। इस प्रकार भारतीय इतिहास में तटीय प्रदेश की भी महत्ता योरपवालों के आने के साथ साथ बढ़ गयी।

पूर्वोक्त बातों से यह ज्ञात होता है कि भारत की भूमि अत्यन्त उपजाऊ तथा सदा सुन्दर खेतों और जंगलों से सुशोभित हैं। हरे हरे

जलवायु का प्रभाव

खेत कितना मन को हरनेवाले होते हैं! पहाड़ों पर सघन बनों के दृश्य अत्यन्त आकर्षक होते हैं! पहाड़ों पर ऊंचे ऊंचे शहर और बर्फ से ढकी हुई पर्वत की चोटियाँ देखने योग्य होती हैं! जैसी सुन्दरता वैसे ही धान्य आदि की प्रचुरता भी है। धान, गेहूं, कपास आदि सभी अन्न व वस्तु मनुष्य के आवश्यकतानुसार प्रकृति ने दिए हैं। कोयला, लोहा, ताम्बा, सोना आदि खनिज पदार्थ भी कान से निकलते हैं। हीरा और मोती की भी कमी नहीं है। सफेद कोयला (white coal) से व्यापार तथा कारखाने को बखूबी सहायता मिलती है। इन सब बातों के फलस्वरूप लोग यहाँ सुखपूर्वक स्वास्थ्यवर्द्धक जलवायु में जीवन बिताते हैं। कर्क रेखा भारत के बीचोबीच से जाती है। उत्तरी भारत की जलवायु प्रायः समशीतोष्ण है। पानी भी अच्छा बरसता है। गर्मी तथा सर्दी का माप प्रत्येक प्रांत में

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भिन्न होता है। पंजाब व सरहदी सूबे में सर्दी गर्मी अधिक होती है तो बंगाल आदि प्रांतों में नम जलवायु है। दक्षिण भारत सदा गर्म रहता है। किनारे के मैदान में चित्त को प्रसन्न रखनेवाली सुन्दर जलवायु है। जलवायु के कारण यह देश खेती के लिए अच्छा स्थान बन गया है। जलवायु के बदलने से ही वहाँ भिन्न प्रकार की वनस्पति, खनिज पदार्थ और पशु होते हैं जो जीवन को सुखी तथा आनन्दमय बनाते हैं। उत्तरी मैदान में सब प्रकार की पैदावार, पठार में खनिज पदार्थ तथा पशु, काश्मीर में भेड़, सिन्ध राजपुताना में ऊंट, और बंगाल में शेर पाए जाते हैं। इन सब बातों से भारतवर्ष एक स्वयं पूर्ण देश है जिसको बाहर से किसी चीज के मँगाने की आवश्यकता नहीं। जलवायु ही के कारण पर्वतनिवासी कठोर परिश्रमी जाति बन जाते हैं। इसीके कारण मनुष्य के मस्तिष्क पर भी प्रभाव पड़ता है। भारतवर्ष में दिमागी काम करने की सरलता पायी जाती है। इस देश में वस्त्र या पहनावे के तरीके को भी जलवायु ने स्थिर किया है। पर्वतों पर गर्म तथा चुस्त वस्त्र पहनते हैं। मैदानों में सूती या रेशमी पर ढीले वस्त्र का प्रयोग करते हैं। अधिक गर्म प्रान्तों में गहरे रंग का वस्त्र पसंद किया जाता है, परन्तु ठंढे व नम जलवायु में हलके रंग का कपड़ा पहनते हैं। इस प्रकार जलवायु की भिन्नता से भारतवर्ष में लोग सुखी हैं। आर्थिक जीवन में सरलता है। उनकी रहन सहन उसीके अनुकल हो गयी है। संसार में इस प्रकार का देश बिरला ही है। सब प्रकार से भारत धन-धान्य-पूर्ण है।

समस्त प्राकृतिक विवरण के विवेचन के पश्चात् यह बात प्रकट होती है कि भारत की भौगोलिक स्थिति ने भी इसकी महत्ता को बढ़ाया, इसको स्वर्गभूमि का नाम दिया, विदेशी शत्रुओं को इसकी ओर खींचा। हर एक भाग एक दसरे की कमी को परा करता है और भारत की एक जातीयता (nationality) सिद्ध करता है। महान देश होने पर भी, भिन्न-भिन्न प्रांतों में भिन्न-भिन्न प्रांतीय भाषाओं के होते हुए भी यह देश

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

एक संस्कृति और सभ्यता के तागे से बँधा हुआ है। भारतवर्ष एक जाति (nation) है। उत्तर में हिमालय और तीन ओर समुद्र और पर्वतों से घिरे रहकर भारत ने अपनी सभ्यता और संस्कृति को सुरक्षित रक्खा, 'गंगे च यमुने चैव गोदावरी सरस्वती' का पाठ पढ़ाया, वेद तथा रामायण और महाभारत के संदेश लोगों के घर घर में पहुँचाये। ऐसी स्वर्गमयी वसुन्धरा के सांस्कृतिक गौरव का गीत पाठकों को इस पुस्तक के अगले अध्यायों में सुनाया जायगा।

भारत की आदर्श शासन-प्रणाली

संसार में भारत एक प्राचीनतम देश है। यह प्राचीन समय में उन्नति के शिखर पर पहुँच गया था। सभी कार्य उचित प्रकार से किए जाते। प्रत्येक क्षेत्र में शास्त्रीय बातों का पालन किया जाता। इतने बड़े महान देश में शासनसम्बन्धी कार्य भी आदर्श प्रणाली पर सम्पादित किया जाता था। भारतीय साहित्य के आधार पर शासन-प्रबंध का ज्ञान होता है। जिस देश में या भूभाग में जनता निवास करती है, वहाँ पर उसके सारे कार्यभार को सँभालने के लिए किसी प्रकार के शासक (राजा) की आवश्यकता होती है। वर्तमान राजनीतिज्ञ उसी भूभाग को राष्ट्र कहते हैं। पर भारत में कोई ऐसा नियम न था। अथर्ववेद में लिखा है कि प्रारम्भ में समस्त जनपद (राष्ट्र) बिना राजा के ही रहता था। विण्ड् वा इदमग्र आसीत्। राजा की आवश्यकता लोगों को न मालूम हुई। महाभारत के शान्तिपर्व में भी ऐसाही वर्णन मिलता है कि जनता बिना राजा के अपना काम करती थी। धर्म ही सब प्रजा का रक्षक था।

नैव राज्यन्नराजासीन्नच दण्डो न दाण्डिकः
धर्मेणैव प्रजास्सर्वा रक्षन्तिस्म परस्परम्।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इस प्रकार ऋषियों ने यह बतलाने का प्रयत्न किया है कि वर्तमान समय की तरह भारतीय समाज में झगड़े व कलह न थे। सब लोग धर्म के अनुसार जीवन व्यतीत करते थे। पर यह सिद्धान्त सदा के लिए माना न जा सका। कुछ समय के पश्चात् समाज का ऐसा संगठन हो गया कि शासक की आवश्यकता मालूम होने लगी। ऐतरेय ब्राह्मण में उल्लेख मिलता है कि देवासुर संग्राम में देवता हार गए। तो सबने इसके कारण पर विचार किया तो यही समझ में आया कि असुरों का राजा था और देवताओं का कोई शासक न था। ऐसे समय में देवताओं के अंश को लेकर राजा की उत्पत्ति हुई। मनु का कहना है कि परमेश्वर ने राजा की उत्पत्ति की। ऐतरेय ब्राह्मण में जनता द्वारा राजा के चुने जाने का वर्णन किया गया है। भीष्म ने भी युधिष्ठिर से कहा कि अराजकता में सब चीजें नष्ट हो जाती हैं। अतएव लोगों ने दुःखी होकर राजा का चुनाव किया। कौटिल्य ने भी इसी बात का पृष्ठपोषण किया है कि—प्रजा मनुं वैवस्वतं राजानं चक्रिरे। ये कथन बतलाते हैं कि सर्वप्रथम मनु ही आदि राजा था। इन सबके विवेचन से यह विवाद खड़ा हो जाता है कि ईश्वर द्वारा राजा की सृष्टि हुई अथवा वह प्रजा द्वारा चुना गया। मनु आदि शास्त्रकारों की बातें आलंकारिक हैं। वस्तुतः ईश्वर ने किसीको राजा न बनाया। प्रजा ने ऊँचे कर्मों (देवकर्मों) की आवश्यकता समझकर राजा के देवांश होने की कल्पना की। यही कारण है कि राजा को ईश्वर माना जाता था और उसके दर्शन से पुण्य की बात सोची जाती थी। राजा के विषय में वेद तथा रामायण म 'राजकर्त्तार' शब्द आता है जिससे साफ तौर पर यह बात सत्य मालूम होती है कि राजा बनाए जाते थे। ईश्वर द्वारा उनकी सृष्टि नहीं हुई बल्कि उनको मनुष्य लोग चुनते थे। भारतीय इतिहास ऐसे प्रमाणों से भरा पड़ा है।

राष्ट्र से राजा होता है। इसलिए राष्ट्र को सुरक्षित रखने के लिए राजा को सब तरह की सहायता दी जाती है। कौटिल्य ने कहा

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

है कि 'कोशदण्डबलं हि प्रभुशक्तिः।' कार्यभार चलाने के लिए बल की परम आवश्यकता है। सात प्रकृतियाँ उस राजा के अवयव मानी गयी हैं—

स्वाम्यमात्यौ पुरं राष्ट्रं कोशदण्डो सुहृत्तथा
सप्तप्रकृतयो ह्येताः सप्तांगं राज्यमुच्यते (मनु०)

राजा, मंत्री, दुर्ग (राजधानी), कोश, दण्ड वा बल, मित्र तथा राष्ट्ररूपी सातों अंगों से शासक का शरीर बनता है। चतुर राजा सबको मिला कर काम करता है। मूर्खता से तो अंग नष्ट हो जायँगे और शासन-प्रबंध चल नहीं सकता।

शास्त्रों के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि प्राचीन भारत में शासन-कार्य दो प्रकार से होता था। पहली प्रणाली का प्रजातंत्र नाम दिया जा सकता है। यद्यपि यह शब्द प्रयोग में नहीं आता तौभी शासन के ढंग से यह स्पष्ट है कि वह प्रजातंत्र के अतिरिक्त और कोई तरीका नहीं हो सकता। ऐतरेय ब्राह्मण में जो राजनीति का वर्णन मिलता है उसमें प्रजातंत्र की ही भावना है। महाभारत में 'सदृशः सर्वे जात्या कुलेन' का उल्लेख मिलता है। प्रजातंत्र के लिए 'गण' शब्द का प्रयोग किया जाता था। शांतिपर्व में गण-राज्य शासनप्रणाली का सविस्तृत वर्णन मिलता है। ईसा से कई शताब्दियाँ पूर्व में भारत में गणराज्य की प्रधानता थी। बौद्ध साहित्य में सोलह महाजन पदों के नाम मिलते हैं। शाक्य, वृज्जिमल्ल आदि प्रजातंत्र रियासतें वर्तमान थीं। कौटिल्य ने 'गण' शब्द के द्वारा प्रजातंत्र ढंग का ही विवेचन किया है। कहने का अर्थ यह कि प्रजातंत्र की कल्पना बाहरी नहीं है, वह भारतीय है। साहित्य में प्रजातंत्र के साथ साथ राजा, नृप आदि शब्दों का प्रयोग दूसरे प्रकार के शासनकर्ता के लिए किया जाता था। यानी राजतंत्र की भी सत्ता यहाँ पुरान समय से थी। ब्राह्मणग्रंथों में राजपुत्र शब्द इस बात को साफ तौर से बतलाता है कि उस काल में वंशपरम्परानुगत शासन राजा के हाथ में था। पिता के मरने पर पुत्र को

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सिंहासन अवश्य मिलता था। राजसूय यज्ञ भी यही धानतया बतलाता है कि राजतंत्र शासन में राजा शक्तिशाली व्यक्ति था। पर एक व्यक्ति के हाथ मे प्रबंध न रक्खा जाय, इसीलिए उसके सहायक रहते थे। तैत-रीय संहिता में राजा के सहायक 'रत्निन' का नाम मिलता है। ये सदा राजा के समीप रह कर शासन में सहयोग करते थे। इतना होते हुए भी राजा मनमानी नहीं कर सकता था। जिस समय उसे अपने राज्य का उत्तराधिकारी स्थिर करना होता था वह राज्य के प्रमुख व्यक्तियों को बुला कर पूछ लेता था कि अमुक व्यक्ति के राजकुमार घोषित होने में आप लोगों को कोई आपत्ति तो नहीं है। रामायण में वर्णन आता है कि चक्रवर्ती राजा दशरथ ने भी राम ऐसे महान पुरुष को युवराज बनाते समय सब प्रधान व्यक्तियों से पूछा था। यथा राजा तथा प्रजा। दशरथ की प्रार्थना को सबों ने स्वीकार कर लिया। कहने का तात्पर्य यह है कि राजा की सत्ता ईश्वरकृत (divine right) नहीं समझी जाती थी। राजा को भी सिंहासन पर बैठाने का अधिकार प्रजा के हाथ में रहता था। जनता हरएक प्रकार से शक्तिशाली थी। प्रजातंत्र पूर्ण रूप से तथा राजतंत्र साधारण रूप में प्रजा के हाथों बनाया जाता था। प्रजातंत्र में शासक का चुनाव होता। जो अधिक संख्या में मत ग्रहण करता वही उस राजसभा का सभापति चुना जाता था। अथर्व वेद में वर्णन आता है कि ऐ राजा, राज्य का काम चलाने के लिए प्रजा तुझे निर्वाचित करे (त्वां विशो वृणातां राज्याय स्वामिमाः)। ऐसे और मंत्र हैं जो राज्याभिषेक के समय उपदेश के रूप में कहे जाते थे। "ऐ राजा, हम तुझे लाए हैं; सब प्रजा तेरी इच्छा करे।" शतपथ ब्राह्मण में भी ऐसा ही वर्णन मिलता है कि जब प्रजाजन राजा से संतुष्ट होते हैं तो राजसूय का अनुमोदन करते हैं। ऐतरेय ब्राह्मण में कई पीढ़ियों के लिए राजा निर्वाचित किए जाने लगे। इस प्रकार राजतंत्र की सत्ता बढ़ने लगी।

भारतीय इतिहास के अध्ययन से ज्ञात होता है कि ईसा के छः सदी पूर्व से चौथी सदी तक प्रजातंत्र शासन का वैभवकाल था।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

समय अनेक शक्तिशाली तथा प्रतापी प्रजातंत्र रियासतें वर्तमान थीं। ग्रीक ऐतिहासिकों ने बहुत प्रजातंत्रों का वर्णन किया है । पंजाब में स्थित प्रजातंत्रों ने यूनानी सिकन्दर महान के आक्रमण को रोका था। मौर्य शासन के प्रारम्भ से साम्राज्य की कल्पना राजनीति में आयी। इसीलिए प्रजातंत्रों का ह्रास होने लगा। पंजाब, राजपुताना, मध्य भारत, उत्तरी तराई भाग, मालवा प्रांत में इनका केन्द्र था। उज्जैन के क्षत्रप रुद्रदामन के एक लेख में इनके कुछ नाम मिलते हैं, यानी ईसा की पहली सदी तक इनका शासन था। गुप्तकाल में प्रतापी राजा समुद्रगुप्त ने दिग्विजय के सिलसिले में बचे हुए प्रजातंत्रों का नाश कर दिया। उसने सबको अपने राज्य में मिला लिया। प्रयाग के लेख में उन पराजित राज्यों का नाम मिलता है । अतएव लेखों के आधार पर यह प्रकट होता है कि ईसा की तीसरी शताब्दी तक प्रजातंत्र शासन भारत में सुचारु रूप से चल रहा था। गुप्त सम्राट् समुद्रगुप्त को ही इनका नष्ट करनेवाला बतलाते हैं। इनके बाद उनका नाम तक न रहा और महत्वाकांक्षी नरेश ने उनकी रियासतें अपने साम्राज्य में मिला लीं।

वर्तमान प्रजातंत्र की तरह भारत में भी उस रियासत के सभापति का निर्वाचन जनता द्वारा किया जाता था। उसकी सहायता करने के लिए एक सभा रहती थी जिसमें अनुभवी व्यक्ति रक्खे जाते थे। उन्हीं की सहायता से शासन-प्रबंध का कार्य चलता था। राजा के सहायतार्थ भी समिति रहती थी जिसमें समस्त विभाग के अध्यक्ष सम्मिलित रहते। वह कभी मंत्री परिषद के नाम से भी पुकारी जाती थी। मंत्रीगण राज-कार्य-भार सँभालने में राजा का सहयोग करते । अन्य कार्य एक सा होता था। राज्य की रक्षा, आय व्यय, सेना आदि के सभी काम महत्वपूर्ण थे। इन कामों में दोनों प्रकार के शासनकर्त्ता यथोचित ध्यान दिया करते थे। राजा का कर्तव्य था कि वह सदा प्रजाहित पर ध्यान दे। शांतिपर्व में शासक का यह परम कर्तव्य था कि अपने स्वार्थ की बातों को छोड़कर प्रजाहित का चिंतन करे—

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

स्वप्रियं च परित्यज्य यद्यलोकहितं भवेत् ।

इसके अतिरिक्त यदि राजा शब्द पर विचार किया जाय तो मालूम होगा कि राजा तो प्रकृति (प्रजा) के रंजन के लिए बनाया ही गया था। यानी प्रजा का सुख पहले मुख्य बात समझी जाती थी। राजा का निजी कार्य गौण समझा जाता था।

स्मृति ग्रन्थों में राजा के आदर्श मार्ग का सविस्तृत वर्णन मिलता है। राजधर्म का मूलमंत्र साधु की रक्षा तथा असाधु का दमन करना है। चूंकि एक व्यक्ति सारे राज्य के काम को सुचारु रूप से नहीं कर सकता, इसलिए राजा का कर्तव्य था कि अच्छे मंत्री नियुक्त करे और उनके परामर्श से कार्य करे। मंत्री से सलाह लेने का इतना महत्व था कि इसके बिना राजा को दुर्योधन की तरह नष्ट हो जाने का डर बना रहता था।

य राजा मंत्रिणां वाक्यं न करोति हितैषिणाम्
स शीघ्र नाशमायाति यथा दुर्योधनो नृपः।

इस कारण मंत्री राजा का दूसरा हृदय माना जाता था। नीतिकुशल मंत्री भी राजा को साम, दाम, दण्ड तथा भेद के प्रयोग का अवसर बतलाया करता था। शुक्राचार्य ने बतलाया है कि जिन मंत्रियों से राजा, प्रजा, बल, कोश और वैभव की वृद्धि न हो वे किसी कार्य के व्यक्ति नहीं हैं, उन्हें आलंकारिक अथवा अनावश्यक समझा जाय। तात्पर्य यह है कि राजा मंत्रिपरिषद के द्वारा राज्य के सभी कामों में उन्नति करे, देश में सुख व शांति हो और वैभव की अभिवृद्धि हो। इस प्रकार के राजा भारत में आदर्श मार्ग पर चलते आए हैं। जितने सम्राट थे सबने राज्य की श्रीवृद्धि ही की।

शास्त्रकारों ने राज्य के सुप्रबंध के लिए धन की आवश्यकता बतलाई है। कामन्दक नीतिकार ने तो लिखा है कि कोश ही राजा का मूल सार वस्तु है।

कोशमूलोहि राजेति प्रवादः सर्वलौकिकः।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अतएव खजाना को पूरा करने के लिए यह जरूरी है कि राजा प्रजा पर कर लगावे। धर्मग्रंथों में भी ऐसा विधान पाया जाता है (तथाल्पाल्पो ग्रहितव्यो राष्ट्राद्राज्ञाब्दिकः करः)। राजा जनता से थोड़ा थोड़ा कर ग्रहण करे। उसका व्यवहार ऐसा होना चाहिए ताकि प्रजा पर बोझ न मालूम पड़े। माली की तरह धीरे धीरे पुष्प (कर) चुनता रहे (पुष्पं पुष्पं विचिनुयान्मूलच्छेदं न कारयेत्)। इस प्रकार कर किसी को दण्ड नहीं मालूम पड़ता था। प्रजा नकद रुपया अथवा धान्य के रूप में कर दिया करती थी। कालिदास ने वर्णन किया है कि राजा जो कर वसूल करता था वह प्रजा के हित के लिए व्यय करता था---

प्रजानामेव भूत्यर्थं सताभ्यो बलिमग्रहीत् (रघुवंश)

यानी राजा उस द्रव्य (कर) का रक्षक था। उसी पैसे से मंत्रि-परिषद का खर्च तथा निजी खर्च चलाता था। रक्षा के लिए सेना रक्खी जाती थी। प्रजा के सब कार्य सम्पादित किए जाते। राजा कृषि की उन्नति के लिए नहरें व तालाब खुदवाता था। कहने का सार यह है कि प्रजा से वसूल किए हुए कर को राजा उन्हींके सुख के लिए नाना प्रकार से खर्च करता था।

देश के शासन को आदर्श मार्ग पर चलाने के लिए राजा ने सारे देश को विभिन्न प्रांतों में बाँट दिया था। प्रांत, विषय, तथा ग्राम ही तीन ऐसे स्थान थे जहाँ से शासन का कार्य होता था। इनके अतिरिक्त केन्द्र में मंत्रि-परिषद काम करती थी। प्रत्येक व्यक्ति को कोई न कोई काम सुपुर्द किया गया था। कोई आय-व्यय का हिसाब रखता तो कोई अन्तर्राष्टीय विभाग का प्रधान था। न्याय का कार्य भी पक्षपातरहित होता था। न्यायाधीश सब प्रकार कें न्यायालयों में बड़ा व प्रमुख समझा जाता। शत्रुओं से रक्षा करने के लिए एक सेना भी रक्खी जाती थी। रामायण तथा महाभारत में 'चतुरंगिनीया सेनाया' का उल्लेख मिलता है। हाथी, घोड़े, रथ तथा पैदल—ये चार विभाग थे। सबकी आवश्यकता समय-समय से होती थी। यूनानी लेखकों ने इसी चतुरंगिणी सेना का

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वर्णन किया है। सिकन्दर के आक्रमण के समय पोरस ने चारों बल के द्वारा उसका विरोध किया था। हाथियों का महत्व अधिक था। जितने कठोर कार्य थे सब हाथियों द्वारा किए जाते थे। घोड़े बड़े काम के जानवर थे। युद्ध के समय शत्रु के पीछे से आनेवाली सामग्री को नष्ट करने का काम अश्वारोही किया करते थे। रथ एकत्रित शत्रु सेना को बिखेर दिया करता था। पैदल सिपाही तोपखाना के साथ काम करते थे। इस प्रकार चतुरंगिणी सेना का प्रत्येक अंग विभिन्न कार्य में संलग्न रहता था। आजकल स्थल, जल तथा वायु पर युद्ध करने के लिए दूसरे प्रकार की सेना रक्खी जा सकती है। प्राचीन भारत में भी जल-सेना या नौ-बल मौजूद था। एक तो स्वतंत्र रूप से काम करता था, दूसरा चतुरंगिणी सेना के सहायक के रूप में। भारतीय नौसेना में नाव तथा जहाज वर्तमान थे पर उनपर तोप न रहती। यूनानी लोगों ने चन्द्रगुप्त मौर्य की नौसेना का उल्लेख किया है। ईसा के पूर्व तीसरी सदी से लेकर शिवाजी के काल तक, यानी दो हजार वर्षों तक, भारत में नौसेना का पता लगता है। आकाश-सेना का पता नहीं चलता। कौटिल्य ने "शस्त्रेणैवा-काशयोधिनः" का उल्लेख किया है, जिसका अर्थ यह है कि शस्त्र से ही आकाश-योद्धा लड़ते हैं। इससे प्रकट होता है कि स्थल तथा जल-युद्ध की भांति आकाशयुद्ध भी होता था। विमानों के वर्णन नहीं मिलते, अतएव आकाशयुद्ध के विषय में अधिक बातें नहीं कही जा सकतीं। सेना के बड़े पदाधिकारी को महासेनापति कहा जाता था। उसके अन्य सहायक सेनापति भी नियुक्त किए जाते थे। युद्ध साम्रग्री एकत्र करने के लिए एक विभाग था। उसका प्रधान "रणभाण्डागारिक" कहलाता था। इस प्रकार राजा देश की रक्षा के लिए सेना का प्रबंध करता था।

जितना कार्य राजा स्वयं देख-रेख में रखता वह केन्द्रीय व्यवस्था के नाम से कहलाता था। जैसा ऊपर लिखा गया है समस्त राज्य प्रांतों में बँटा हुआ था। प्रत्येक प्रांत का अधिपति स्वतंत्र रूप से शासन करता था। राजा उसे नियुक्त कर देता और वह गवर्नर अपने अपने सलाह-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कारों से परामर्श लेकर सारा राजकार्य करता था। लेखों में राष्ट्रीय, भोगपति अथवा गोप्ता की पदवियाँ मिलती हैं। प्रांत या भुक्ति के शासक की जगह पर योग्य कर्मचारी की नियुक्ति होती थी। प्रांत में एक मंत्रिमण्डल रहता था जो शासन में सहायता करता। मौर्य-काल से लगातार हर्ष के समय तक (ईसा के पूर्व से छठीं सदी) प्रांत का स्वतंत्ररूप से शासन होता चला आया है। गुप्तकालीन दामोदरपुर (बंगाल) के ताम्रपत्र से ज्ञात होता है कि भुक्ति के शासक की अवधि पांच वर्ष की होती थी। तत्पश्चात् दूसरा राष्ट्रीय नियुक्त किया जाता था।

भुक्ति के अन्तर्गत कई एक विषय अथवा जिले हुआ करते थे। यही अवस्था आजकल भी है। जिले के मालिक को विषयपति कहते थे। इसकी नियुक्ति गवर्नर द्वारा की जाती थी। केन्द्रीय शासन से इस बात में हस्तक्षेप न किया जाता था। उनका एक कार्यालय होता जिसकी मुहरें मिली हैं। विषयपति को 'कुमारामात्य' की पदवी दी जाती थी। इस शब्द से राजकुमार का अर्थ न समझना चाहिए। गुप्त नरेशों के समय में विषय का काम बड़े ढंग से होता रहा। विभिन्न समितियों के चार सदस्य विषयपति को मंत्रणा दिया करते थे। कहने का मतलब यह है कि जिले के अधिकारी को मंत्रिमण्डल की सहायता से काम करना पड़ता था। जिले भर का लेख सुरक्षित रखने के लिए एक कर्मचारी था जिसे पुस्तपाल (record keeper) कहते थे। विषय के समस्त अधिकारी वर्ग पांच वर्ष से अधिक एक स्थान पर शासन नहीं कर सकते थे।

बड़े-बड़े शहरों—राजधानी आदि के कार्य के लिए पृथक से एक समिति रहती जिसकी आधुनिक म्यूनिसपैलिटी से तुलना कर सकते हैं। तक्षशिला, उज्जयिनी, मन्दसोर तथा पाटलिपुत्र ऐसे केन्द्र स्थानों में म्यूनिसपैलिटियाँ काम करती थीं। मेगस्थनीज ने वर्णन किया है कि पाटलिपुत्र के प्रबन्ध के लिए छः कमेटियाँ थीं। एक सफाई का काम

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

देखती, दूसरी जन्ममरण का लेखा रखती । अतिथि के सत्कार के लिए तीसरी कमेटी थी । तौल आदि की जाँच के लिए अलग कमेटी थी । इस प्रकार छः कमेटियों में सारा काम बँटा हुआ था । गुप्त लेखों में नगरपति (चेयरमैन) को 'द्रांगिक' कहते थे । स्कन्दगुप्त के समय में चक्रपालित सौराष्ट्र में नगरपति के स्थान को सुशोभित करता था । नगर का ऐसा कोई कार्य न था जिस पर प्राचीन समय में ध्यान न दिया जाता हो । अतएव यह कहना सदा युक्तिसंगत होगा कि नगर की कमेटी (म्यूनिसपैलिटी) का प्रबन्ध सुन्दर तरीके पर चलता रहा ।

ऊपर कहा गया है कि प्रांत विषय में विभक्त था । शासन की सुबिधा के लिए 'विषय' को ग्राम-प्रवन्ध में विभाजित किया गया था। अतएव ग्राम ही को शासन की छोटी से छोटी संस्था माना है । प्रत्येक ग्राम में स्वतन्त्र रूप से शासन होता था । ये एक प्रकार के प्रजातंत्र थे जिन पर ग्राम-सभा के अतिरिक्त किसीका दवाव न था । ग्राम के प्रधान व्यक्ति को 'ग्रामपति' या 'महत्तर' कहा जाता था । इसकी छोटी सभा का नाम पंचायत था जिसके सभासद गांववालों से चुने जाते थे । पंचायत गाँव की सबसे बड़ी संस्था थी । यह पूर्ण रूप से स्वतंत्र थी, केन्द्र अथवा विषय से नियंत्रित न होती थी । लगान लेने के अतिरिक्त राजा का ग्राम पर और कोई अधिकार न था । प्रजा का सब कुछ अधिकार था । भूमि जनता की थी । वही उसका काश्त करती और लगान गाँव के मुखिया (महत्तर) के द्वारा राजा को भेजती थी। ग्राम में शिक्षा, स्वास्थ्य, खेती, सफाई तथा न्याय आदि बातों की देखरेख पंचायत किया करती थी । कार्य की अधिकता से प्रत्येक काम के लिए पृथक पृथक कमेटी बना दी गयी थी । तमाम सभासद जनता द्वारा चुने जाते और उन्हींके जिम्मेदार होते थे । राजा के सदृश गाँव के मुखिया को सब अधिकार प्राप्त था । कर लगाना, माफी देना, जमीन को बेचना आदि भूमि-सम्बन्धी कार्य महत्तर के सपुर्द था । ग्राम-सभा का प्रधान होते हुए भी मुखिया प्रत्येक काम पर निगरानी रखता । वह भिन्न-भिन्न उपसमि-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तियों को आदेश करता था। भारतीय लेखों में ग्राम के प्रबन्ध का विस्तृत वर्णन मिलता है । साहित्य में ऐसे प्रमाणों की कमी नहीं है जो इन बातों की पुष्टि करे । जितना वर्णन मिलता है उनमें सर्वत्र यही ज्ञात होता है कि गाँव का शासन आदर्श ढंग का था। प्रजा का सब शाखाओं में पूरा अधिकार था। जनता के आर्थिक, मानसिक, शारीरिक तथा पारलौकिक मार्गों की उन्नति के लिए पंचायत प्रबन्ध करती। जहाँ गांव में कारोबार है वहाँ शिक्षा का भी प्रबन्ध था। खेती की उन्नति म संलग्न होने के लिए रास्ता खुला था। आमोद-प्रमोद की सामग्री वर्तमान थी। कहने का तात्पर्य यह है कि भारत को सभ्यता के शिखर पर पहुँचाने में, समृद्धशाली तथा समुन्नत वनाने में गाँवों का बहुत बड़ा हाथ रहा। जनता के प्रत्येक काम पर ग्राम-सभा का ध्यान था। यही कारण है कि प्राचीन भारत में रामराज्य की कल्पना की गयी है। शासन प्रबन्ध को आदर्श शैली पर चलाने में राजा तथा प्रजा दोनों का समान भाग था।

भारत का सामाजिक तथा भौतिक जीवन

ऋग्वेद के पुरुषसूक्त में वर्णन आता है कि प्रत्येक जीव में महान शक्ति वर्तमान है। सब जीवात्मा अमर है। भारतीयों के जीवन का ध्येय मोक्ष है। संसार में ऋषियों ने धर्म और समाज का अत्यन्त सुन्दर मेल किया है और व्यक्ति की सत्ता धर्म के लिए बतलायी गयी है। धर्म की भावना प्रधान होने से समाज में प्रत्येक प्राणी को कुछ कर्त्तव्य का पालन करना पड़ता है। श्रुति तथा स्मृति में समाजसम्बन्धी बातों का विवरण मिलता है। जब प्राणी समाज में प्रवेश करता है तो उसके सम्मुख तीन ऋण सदा बने रहते हैं। इन सब कारणों से भारतीयों ने समाज को ऐसा बनाया जिससे सभी ध्येय वस्तुएँ प्राप्त हो सकें। सर्व-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्रथम आर्यों ने अपने पूरे समाज को तीन वर्णों में विभक्त किया। इस देश की सबसे मुख्य संस्था 'वर्ण-व्यवस्था' है। इसी भित्ति पर हिन्दू-समाज का भवन अवलम्बित है। प्राचीन समय से यह व्यवस्था अक्षुण्ण रीति से चली आयी है। संसार के इतिहास में ऐसी व्यवस्था अन्यत्र नहीं पायी जाती। वैदिक काल में समाज को चार वर्णों में विभाजित किया गया था। कार्य के अनुसार वर्ण निश्चित किए गए थे। पुरुषसूक्त में इन चारों का नाम ब्राह्मण, क्षत्रिय, विश् और शूद्र मिलता है। धर्मशास्त्रों में भी चारों वर्णों का उल्लेख पाया जाता है। समयान्तर में ये वर्ण जाति के रूप में परिणत हो गए। समाज में कार्य की परेशानी से वचने के लिए विभिन्न वर्ण (जाति) का कर्म निश्चित कर दिया गया जिससे सभी काम सुविधा के साथ चलने लगे। स्मृतिकारों ने तीन वर्णों (ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य) को द्विज के नाम से सम्बोधित किया है। यद्यपि हिन्दू शास्त्रकारों ने ईसा से पूर्व ही चारों वर्णों के पृथक-पृथक सामाजिक स्थान निर्दिष्ट कर दिए थे फिर भी आजकल की तरह न इतनी उप-जातियाँ थीं और न चारों वर्णों में इतना भेद-भाव था। महाभारत काल में चारो वर्णों के लोग राजसभा के सभासद होते थे। बौद्ध तथा जैन धर्मों के कारण जाति-व्यवस्था पर गहरा धक्का पहुँचा था पर उसका अस्तित्व बना रहा। हिन्दू धर्म के अभ्युदय के साथ इस संस्था की भी उन्नति हुई। वात्स्यायन ने कामसूत्र में जातियों का पूरा विवेचन किया है।

जैसा कहा गया है समाज चार जातियों में वँटा था। सब में श्रेष्ठ ब्राह्मण को माना जाता था। यह समाज का अगुआ था। विद्वत्ता, पवित्रता तथा व्यवहार में कुशलता के कारण चारों में इन्हीं को प्रधान पद प्राप्त था। भगवान ने गीता में लिखा है कि

> शमो दमः तपः शौचं शान्तिरार्जवमेव च
> ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम्।

अन्तःकरण से पवित्र, इन्द्रियों को वश में रखना, नम्रता, ज्ञान तथा

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ईश्वर को मानना आदि ब्राह्मण के स्वाभाविक कर्म माने गए हैं। मनु ने ब्राह्मणों के छः कर्त्तव्यों—पढ़ना, पढ़ाना, यज्ञ करना, यज्ञ कराना, दान देना तथा दान लेना—का वर्णन किया है।

अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा
दानं प्रतिग्रहश्चैव षट् कर्माण्यग्रजन्मनः। (मनुस्मृति)

ब्राह्मण समस्त प्रजा में शिक्षा का प्रचार करता था। वैदिक यज्ञों का विधान करना और दान लेकर प्राणियों को पाप से मुक्त करना भी उसका परम कर्तव्य था। ब्राह्मण राजा को प्रत्येक विषयों पर सलाह देता था। इनका काम सदा आदर्श मार्ग पर चलना था। अपने षट्कर्म के सिवाय ब्राह्मण आपत्तिकाल में अन्य प्रकार से भी जीविका निर्वाह करता था। परन्तु ब्राह्मण के कर्म बतलाते हैं कि उसका जीवन कितना महान था। संतोष ही उसका धन था। वह अपना समय परोपकार में व्यतीत करता था। यूनानी यात्री मेगस्थनीज ने लिखा है कि ब्राह्मण सोना को भी न चाहते थे और न मृत्यु से डरते थे। कठिन से कठिन अपराध करने पर ब्राह्मण को प्राणदण्ड नहीं दिया जाता था। ब्राह्मण-बध से बढ़ कर दूसरा कोई पाप संसार में न था। समयान्तर में इस जाति में अनेक उपजातियाँ बन गयीं। इस प्रकार जाति-भेद बढ़ता गया। बारहवीं सदी के बाद ब्राह्मणों में पंचगौड़ तथा पंचद्राविड़ की उत्पत्ति हुई।

समाज में ब्राह्मणों के समान क्षत्रियों का भी ऊंचा स्थान था। क्षत्रियों के भी कार्यों में दान देना, यज्ञ करना तथा विद्याध्ययन मुख्य समझे जाते थे परन्तु उनका प्रधान कर्तव्य प्रजा का पालन था।

क्षत्रियस्य परो मः प्रजानां परिपालनम् (विष्णुस्मृति)

वैदिक साहित्य में राजन्य शब्द से क्षत्रिय का बोध होता है। बौद्ध काल में क्षत्रियों की बड़ी प्रधानता रही। गौतम तथा महावीर क्षत्रिय वंश में पैदा हुए थे। तत्कालीन अन्य धार्मिक विद्वान क्षत्रिय ही थे। अतएव उनकी गणना ब्राह्मणों से भी श्रेष्ठतर होने लगी। बौद्ध जातक

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कथाओं में यहाँ तक उल्लेख मिलता है कि धर्मप्रवर्तक सदा क्षत्रिय कुल में ही उत्पन्न होते हैं। प्राचीन काल में जनक, प्रवाहन तथा जैवलि आदि क्षत्रियों ने शिक्षक का कार्य किया था । बौद्ध काल के पश्चात् क्षत्रियों की उतनी प्रधानता न रही । ब्राह्मण धर्म के अभ्युदय के साथ समय परिवर्तित हो गया। क्षत्रियों में भी सात्विक प्रवृत्ति के लोग पैदा होते रहे। चीनी यात्री ह्वेनसांग ने लिखा है कि ब्राह्मण के सदृश क्षत्रिय भी सरल, पवित्र तथा मितव्ययी होते थे । उनमें दुर्व्यसनों का अभाव था। भगवान कृष्ण ने भी गीता में उपदेश दिया कि

शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम्
दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम्

क्षत्रियों में शूरता, धीरता के अतिरिक्त नियम रखने तथा दण्ड देने की शक्ति का प्राबल्य होता है। यही कारण है कि वैदिक काल से ही क्षत्रिय भारत में शासक होते चले आए । इनमे उपजातियाँ नहीं थीं। सिर्फ गोत्र की वजह से नामों में भेद था।

तीसरा वर्ण वैश्यों का था जिनका प्रधान कर्म वाणिज्य करना था।

वाणिज्यं कर्षणं चैव गवांच परिपालनम् (मनु)

अत्यन्त प्राचीन काल से ही वश्य लोग छोटी छोटी समितियां बनाकर कार्य करते थे । वर्तमान समय की लिमिटेड कम्पनी प्राचीन संस्था का नवीन रूप है । शासन के अध्याय में यह बतलाया जा चुका है कि भारत का समस्त व्यापार वैश्यों के हाथ में था जो श्रेणी के नाम से पुकारे जाते थे । श्रेणियाँ प्रायः सारे आर्थिक काम किया करती थीं। 'लक्ष्मी वाणिज्यमाश्रिता' उक्ति के अनुसार वैश्यों के पास अपार सम्पत्ति थी । समाज में धन की आवश्यकता पड़ने पर इन लोगों से कर्ज लिया जाता था । वैदिक काल में धर्म तथा रक्षा के कार्य हो जाने पर देश में श्रीवृद्धि की जिम्मेदारी वैश्यों को दी गयी, इसलिए इस तीसरे वर्ण ने समाज में स्थान प्राप्त कर लिया। वाणिज्य कोई निन्दनीय कार्य न समझा जाता था । आपत्तिकाल में

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ब्राह्मण क्षत्रिय भी इस काम को करते थे । मनु आदि स्मृतिकारों न प्राचीन वैश्य वर्ण का आदर के साथ उल्लेख नहीं किया है । उनके कथनानुसार अतिथि वैश्य को भृत्य के साथ बैठा कर भोजन कराना चाहिए । याज्ञवल्क्य ने भी शूद्र के समान वैश्यों के अशौच का वर्णन किया है । इसका मुख्य कारण क्या था, यह ठीक तरह से कहा नहीं जा सकता । पर यह तो मानना पड़ेगा कि वैश्यों को द्विज मानते हुए भी समाज में उनका वैसा आदर न था जितना ब्राह्मण तथा क्षत्रिय का था । महाभारत में राजसभा में वैश्य भी सभासद हुआ करते थे । उनके मंत्री होने का भी उल्लेख प्रशस्तियों में पाया जाता है । बंगाल में प्राप्त दमोदरपुर ताम्रपत्र में वर्णन मिलता है कि प्रथम श्रेणी, प्रथम कुलिक तथा प्रथम सार्थवाह राजसभा के प्रधान व्यक्ति थे । वैश्य जाति में कोई उपजाति न थी पर समयान्तर में काम के अनुसार उसमें कई उपजातियां बन गयीं ।

द्विजाति में उपर्युक्त तीन वर्णों के अतिरिक्त कायस्थ की भी गणना होती है । शायद जो लोग लेखक का काम करते थे, वही कायस्थ कहलाए । गौरीशंकर ओझा ने लिखा है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य जातियाँ जो लेखक का काम करती थीं वह कायस्थ कहलायीं । राजकर्मचारी का तथा न्यायालयों में लेखक का काम अधिकतर कायस्थ ही करते थे । वैदिक काल की वर्ण-व्यवस्था में कायस्थों का कोई नामोनिशान तक न था परन्तु पीछे से लेखक बनने के नाते उन लोगों ने पृथक् अपनी जाति कायम करा ली ।

वर्ण-व्यवस्था के अन्तिम वर्ग का नाम शूद्र था । तीनों वर्णों—ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य—की सेवा करना ही शूद्रों का मुख्य कर्त्तव्य माना जाता था ।

पशूनां रक्षणं चैव दास्यं शद्रं द्विजन्यनाम् । (मनु)

आधुनिक काल की तरह यह वर्ण अस्पृश्य न समझा जाता था । समाज में इनको समुचित स्थान प्राप्त था । महाभारत में वर्णन मिलता

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

है कि शूद्र राजसभा के सभासद हुआ करते थे। विष्णु ने लिखा है कि द्विजों की तरह शूद्र भी पंच महायज्ञ कर सकते हैं—

पंचयज्ञं विधानं च शूद्रस्यापि विधीयते।

कुछ स्मृतिकारों ने वेदाध्ययन का अधिकार शूद्रों को नहीं दिया है। पीछे के समयों में शूद्र लोगों का स्थान समाज में गिर गया। उनके साथ यात्रा करना तथा उनसे किसी वस्तु का छू जाना अनुचित समझा जाता। शूद्र के घर आने पर अतिथि होने के नाते उसे नौकर के साथ खाना खिलाया जाता था। परन्तु आज कल से उनकी दशा उन्नत अवस्था में थी। शूद्र धीरे-धीरे सेवा-भाव से हटकर दूसरे कामों में लग गए। इस प्रकार समाज में बहुत सा काम—कृषि, वाणिज्य तथा कारीगरी—शूद्रों के हाथ में आ गयी। इन कारणों से वे धनवान भी हो गए। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि शूद्र पहले धनवान नहीं होते थे। मनु ने कहा है कि शूद्र राजा के राज्य में ब्राह्मणों को निवास न करना चाहिए। इससे साफ मालूम पड़ता है कि शूद्र जाति के शासक भी होते थे। समाज में किसी कारणवश शूद्र अपराधी को कठोर दण्ड दिया जाता था। शूद्रों में भेद-भाव पीछे उत्पन्न हुआ। यह भेद कामों की विभिन्नता के कारण पैदा हुआ। विद्वानों का मत है कि कार्य के अनुसार ही शूद्रों में उपजातियाँ बनती गयीं। इन चारों वर्णों के अतिरिक्त कुछ ऐसी जातियाँ थीं जो अस्पृश्य समझी जातीं और उन्हें अन्त्यज कहते थे। शूद्र तथा अन्त्यज में बहुत अन्तर है। शायद अन्त्यजों की उत्पत्ति प्रतिलोम विवाह से हुई। ये चारों वर्णों के साथ निवास न कर सकते थे। आधुनिक काल की तरह प्राचीन समय में छूआ-छूत का इतना विचार न था। नीच कर्म करनेवालों को छूना अनुचित समझा जाता था। पर वर्तमान समय के नियम तो मध्यकाल में बने और स्मृतियों में नाना प्रकार के अन्त्यज और स्पृश्यास्पृश्य का विचार समाज में आ गया।

भारतवर्ष की सबसे अजीब संस्थाएँ संस्कार तथा आश्रम हैं। प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में ऐसे समय आते हैं जिनकी कुछ न कुछ महत्ता

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

समझी जाती है। उन अवसरों पर उत्सव मना कर चित्त की भावना को व्यक्त करते हैं। नहीं कहा जा सकता कि वे सब आनन्ददायक ही होते हैं पर उन संस्कारों से जीवन की मुख्य घटनाएँ सम्बन्धित हैं। ऋषियों ने इन संस्कारों को सोलह अवसरों पर मनाने का विधान किया है। जीव के गर्भ में आने से ही वह मनुष्य बन जाता है। अतः उस व्यक्ति की सूक्ष्म दशा से ही संस्कार प्रारम्भ होते हैं। गर्भ में आने पर गर्भाधान संस्कार होता है। पैदा होने पर, नाम रखने के समय, अन्नप्रासन के अवसर पर भी विभिन्न रीति से शास्त्रानुकूल संस्कार मनाए जाते हैं। चूड़ाकर्ण भी एक प्रधान संस्कार समझा जाता है। यज्ञोपवीत और विवाह आदि तो जीवन के शुभ अवसर हैं और अतएव इन समयों पर खुशी मनाना स्वाभाविक है। प्रत्येक व्यक्ति के जीवन के अन्त में भी (मृत्यु के समय) अन्तिम संस्कार का विधान किया गया है। कहने का तात्पर्य यह है कि जन्म से लेकर (गर्भाधान के समय) मृत्यु पर्यन्त मनुष्य के जीवन में सोलह प्रकार के संस्कार मनाए जाते हैं। भारतवर्ष की यह पद्धति संसार में एक नयी वस्तु मानी जाती है। वैदिककाल से ही इन संस्कारों को कार्यरूप में लाया जाता था। वर्तमान समय में मुख्य संस्कारों को सभी हिन्दू मानते हैं। ये कार्य उस प्राचीन संस्था के प्रतीक रह गए हैं। धर्मशास्त्रों में इनका वर्णन विस्तार के साथ पाया जाता है। आधुनिक काल में प्राचीन संस्कारों को फिर से कार्यान्वित करना चाहिए। ये भारतीयों की विशेषता को बतलावेंगे। कारण यह है कि मनुष्य का जीवन कभी धर्म से खाली नहीं समझा जाता है। गौतम ने जीवन में चालीस संस्कारों का वर्णन करते हुए लिखा है कि जो व्यक्ति अच्छे गुणों से रहित होगा उसे ईश्वर की प्राप्ति नहीं हो सकती। सारांश यह है कि सभी लोगों ने संस्कार की महत्ता को समझा था और प्रत्येक परिवार में इस पर अमल किया जाता था।

जैसा लिखा गया है मनुष्य जीवन में चारों आश्रमों का एक

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ऐसा मार्ग है कि व्यक्ति शनैः शनैः मोक्ष की प्राप्ति कर लेता है। चारों आश्रम में मनुष्य अपने श्रम से, मानसिक चिन्तन से, धार्मिक पवित्रता से, अहं को त्याग देने से आत्मा को ऊंचा उठा सकता है। इसमें मनुष्य-जीवन का पूरा इतिहास छिपा है। सबसे पहला आश्रम ब्रह्मचर्य का है। ब्रह्मचारी वेदाध्ययन करता है, ज्ञान से आत्मा की उन्नति करता है तथा जीवन को सुखी बनाने के लिए कठिन नियमों और उपनियमों का पालन करता है। यह मनुष्य के लिए ट्रेनिंग का समय है जिसको पार कर वह असली जीवन में पदार्पण करता है।

जीवन का दूसरा आश्रम 'गृहस्थ' के नाम से पुकारा जाता है। सारी ज्ञानराशि को ग्रहण कर ब्रह्मचर्य के बाद वह व्यक्ति गृहस्थ बनता है। यहाँ उसे तीन ऋणों—पितृ, ऋषि तथा देव—से मुक्त होने का उपाय करना पड़ता है। यद्यपि वह संसार के सारे सुख और ऐश आराम की सामग्री का उपभोग कर सकता है तौभी गृहस्थाश्रम सबसे कठिन समय माना जाता है। मनु तथा वशिष्ठ का मत है कि गृहस्थ जीवन आश्रमों में सबसे अच्छा है। इस काल का सबसे प्रधान कार्य एक स्त्री को पत्नी के रूप में रखना है। वैदिक साहित्य में पत्नी को बड़ा ऊँचा स्थान दिया गया है। तैतरीय तथा शतपथ ब्राह्मणों में वर्णन मिलता है कि पत्नी से ही गृहस्थ पूरा समझा जाता है। मनु ने तो उल्लेख किया है कि पुरुष का अस्तित्व पति तथा पत्नी को मिलाकर बनता है। स्त्री तो पुरुष की छाया समझी जाती है। कहने का अर्थ यह है कि गृहस्था-श्रम का मुख्य कार्य पत्नी का ग्रहण करना है। इस आश्रम में तीनों ऋणों से छुटकारा पाना गृहस्थ का ध्येय होना चाहिए। पुत्र की उत्पत्ति, यज्ञ तथा अध्ययन से वह ऋणों से मुक्त होकर सुख पाता है।

गृहस्थ जब देखता था कि उसके बाल सफेद हो गए और पौत्र का जन्म हो गया तो वह सुखों को त्याग कर और धन तथा बान्धव की इच्छा को छोड़कर वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश करता था। पवित्र जीवन व्यतीत करता हुआ वह जंगल में रहता था। बस्ती में आने की उसको

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कोई आवश्यकता न होती थी। वह जंगल में होम करता था और कंद-मूल फल पर जीवन बिताता था।

मनुष्य जीवन के अंतिम आश्रम को संन्यास आश्रम कहते थे। वह अपने को ईश्वर में मिला देता और मोक्ष प्राप्त करता था। उपनिषदों में उसे कई एक नाम से सम्बोधित करते थे। यति—जो अपनी वासना को वश में रक्खे; संन्यासी—जो सब वस्तुओं को त्याग दे; मुनि—जो ध्यान मे लीन हो; परिव्राजक—जो सर्वत्र भ्रमण करता हो; अथवा भिक्षु—जो भिक्षा पर जीवन बिताता हो। इन नामों से वह मनुष्य अंतिम समय में विख्यात होता था। यति के लिए न रहने को झोपड़ी होती, न भोजन के लिए अन्न, और न वह हवन करता था। वह संसार में अहं को भुला देता था। वह गाँवों में भिक्षा माँगने के लिए जाया करता था। पृथ्वी ही उसकी शय्या थी। यानी संसार में किसी भी वस्तु की उसे आवश्यकता न रहती थी। सभी उसके लिए "समः" समान थे। ब्रह्म की प्राप्ति संन्यासी का ध्येय हुआ करता था। वैदिक साहित्य में चारों आश्रमों का समान वर्णन नहीं मिलता। परन्तु उपनिषद काल में आश्रमों का पूरा विकाश हो गया था। किसी शास्त्रकार ने यह भी उल्लेख किया है कि ब्रह्मचर्य आश्रम के बाद मनुष्य चौथे आश्रम में प्रवेश कर सकता था। इस प्रकार का वर्णन बौद्ध जातकों में कई स्थानों पर मिलता है। परन्तु इस प्रकार के जीवन की प्रशंसा नहीं की गयी है। चारों आश्रमों में क्रमशः जीवन को बिताना श्रेयस्कर समझा जाता था। गृहस्थाश्रम जीवन शरीर की रीढ़ समझी जाती है जिससे समाज में व्यक्ति सुखी रह सकता है। मनु का मत है कि बिना तीनों ऋण से मुक्त हुए कोई संन्यास आश्रम में नहीं आ सकता। इतना ही नहीं, राज-नीति ग्रंथों में राजा को आदेश किया गया है कि किसी व्यक्ति को प्रथम आश्रम से यति न बनने दिया जाय। कौटिल्य ने लिखा है कि चारों वर्णों तथा चारों आश्रमों में प्रत्येक मनुष्य सबको पार करता हुआ समाज में रह सकता था। समाज के नियमानुकूल वह क्रमशः सब

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सीढ़ियों को पार करता हुआ आगे बढ़ सकता है। यदि प्राचीन समय की ऐतिहासिक घटनाओं का अध्ययन किया जाय तो स्पष्ट ज्ञात होता है कि भारत में चारों आश्रमों को क्रमशः पालन करने की परिपाटी थी। यूनानी यात्री मेगस्थनीज ने ईसा के पूर्व तीसरी सदी में लिखा था कि यति लोग ज्ञानवृद्ध तथा वयोवृद्ध व्यक्ति होते थे। ईसा की पहली शताब्दी तक बुद्धधर्म का प्रभाव जाता रहा और यकायक परिव्राजक बनने की प्रथा भी जाती रही। ब्राह्मणों ने प्राचीन शास्त्रीय रीति से आश्रमों का पालन किया। गुप्तकाल में समाज आदर्श मार्ग से सब नियमों का पालन करता रहा। उस समय किसी अशास्त्रीय घटना का उल्लेख नहीं मिलता। यह विवरण इसको प्रमाणित करता है कि संसार में ये संस्थाएं अद्वितीय थीं। आधुनिक काल में भी उनपर कार्य करने का प्रयत्न किया जाता है पर सांसारिक बन्धनों के कारण हम उस ऊंचे आदर्श तक पहुँच नहीं पाते और जीवन असफल रह जाता है। आर्थिक उन्नति को जीवन का ध्येय मान कर कार्य करने से आश्रमों के पालन करने में कठिनाई दिखलाई पड़ती है। प्राचीन प्रणाली को मानने से तत्कालीन समाज सुखी था और जीवन के प्रत्येक मार्ग में सफलता ही मिलती रही।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज उसका प्राण है। यदि वह समाज से बाहर रक्खा जाय तो उसका जीवन कठिन हो जायगा। अतएव वह सबसे मिलकर आनन्दमय जीवन व्यतीत करने का प्रयत्न करता है। यहाँ पर प्राचीन समय के लोगों की रहन सहन, आमोद तथा उनके जीवनसम्बन्धी अन्य बातों का वर्णन किया जायगा। वैदिक काल से लोगों ने रहने के लिए इमारतें बनवायीं। उनके भवन अत्यन्त सुन्दर होते। सिन्ध की घाटी में जो महेन्जुदारो में खुदाई हुई है उसमें भव्य महल तथा मार्ग के भग्नावशेष मिले हैं। मनुष्य के आवश्यक सभी सामान, स्नानागार, अतिथिगृह आदि दिखलाई पड़ते हैं। ज्यों-ज्यों आर्य सभ्यता फैलती गयी, समाज में रहने के लिए सुन्दर मकान बनाने का आयोजन होता गया। अशोक के महल के अवशेष भाग पाटलिपुत्र

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

में मिले हैं जो साफ़ बतलाते हैं कि ईसा के पूर्व सदियों में कैसे मकान बनते थे। कवि कालिदास तथा शूद्रक ने राजमहलों तथा साधारण लोगों के निवासस्थान का वर्णन किया है।

महलों तथा गृहों से लगा हुआ छोटा सा बाग रहता था जिसमें आमोद-प्रमोद की सामग्रियाँ एकत्रित रक्खी जाती थीं। साहित्य में ऐसा वर्णन कई स्थानों पर मिलता है। पक्षी पालने का शौक अधिकतर लोगों को था। प्रायः शुक, सारिका, मोर तथा हंस आदि को लोग पालते थे। पुरातत्व विभाग की खुदाई में ऐसे स्थान मिले हैं जहाँ पर पक्षियों की आकृतियाँ पाई गयी हैं अथवा मिट्टी की मूर्त्तियाँ मिली हैं। पशुओं को आमोद का साधन बनाया जाता था। रथ की दौड़ तथा घुड़दौड़ में घोड़ों की तेजी देखी जाती थी। वैदिक काल में ये दौड़ विशेष प्रकार से आमोद के साधन थे। प्राचीन चित्रकारी में घोड़े तथा हाथियों पर बैठे हुए स्त्री-पुरुष के चित्र मिल्ते हैं, जिससे इन पशुओं की प्रधानता ज्ञात होती है। समाज में प्रायः सभी, राजा-रंक, आमोद-प्रमोद में भाग लेते थे। प्राचीन काल से लेकर आज तक पासा खेलने का वर्णन पाया जाता है। आर्यों का यह प्रधान खेल था। नृत्य तथा गाने बजाने का स्थान कम महत्त्वपूर्ण न था। सभी लोग इसमें भाग लिया करते थे।

सामाजिक जीवन में आनन्दलाभ के लिए बड़े-बड़े उत्सव मनाये जाते थे। सामूहिक यात्रा, समाज-गोष्ठी, उद्याण-भ्रमण तथा समस्या-क्रीड़ा नामक पाँच उत्सवों का वर्णन वात्स्यायन ने कामसूत्र में किया है। अशोक महान की प्रशस्तियों में ऐसे उत्सव तथा क्रीड़ा का उल्लेख पाया जाता है। राजा लोग इसमें भाग लिया करते थे। चीनी यात्री फाहियान ने पाटलिपुत्र की रथयात्रा का वर्णन किया है। देवताओं की सोने की मूर्त्तियाँ, चाँदी-जटित रेशम की ध्वजा के साथ सुन्दर भड़कीले रथ पर घुमायी जाती थीं। गाना बजाना भी साथ साथ हुआ करता था। प्रत्येक जनपद में ऐसा हुआ करता था। इन सब आनन्दप्रद उत्सवों में

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सभी शरीक होते थे । इसके अतिरिक्त राजा तथा क्षत्रिय लोग आखेट में भी सम्मिलित होते थे । जानवरों की लड़ाई भी देखने की वस्तु समझी जाती थी । ये सब प्राचीन समय में आमोद तथा मनोरंजन के साधन समझे जाते थे ।

समाज में मनुष्यों के वस्त्राभूषण के विषय में अनेक साहित्यिक विवरण मिलते हैं पर उनका नमूना बहुत पुराना नहीं मिलता । यों तो वेदों में कपड़े बुनने का जिक्र है पर जिस समय से मूर्त्तियाँ बनने लगीं उसी काल से भारतीय नर-नारियों के पहनावा तथा आभूषण का ज्ञान होता है । पुराने समय में पुरुषों के लिए अधोवस्त्र (धोती) तथा उत्तरासंग (चादर) का व्यवहार होता था । ईसवी सन् से जो मूर्त्तियाँ बनने लगीं उनपर पतले वस्त्रों का आभरण दर्शाया गया है । इस हालत में अधोवस्त्र को पहचानना कठिन हो जाता है । सोने के सिक्कों पर कुशान तथा गुप्त नरेश लम्बे कोट पहने हुए अंकित किए गए हैं । साधारण लोग सिर पर पगड़ी तथा राजा लोग मुकुट धारण करते थे । स्त्रियाँ साड़ी पहनती थीं । उनका कपड़ा रंगीन हुआ करता था । मथुरा के कंकाली टीले से प्राप्त प्रस्तरों में लंहगा और चादर पहने हुए स्त्रियों के चित्र अंकित हैं । बाघ की गुफाओं में जो चित्र चित्रित हैं उनमें स्त्रियाँ साड़ी तथा चोली पहने दिखलाई गयी हैं । अजंता में छीट का अँगिया पहने हुए स्त्री का चित्र मिलता है । इस प्रकार नाना प्रकार के वस्त्रों का समाज में प्रयोग होता था ।

पुराने समय में वस्त्र के साथ केश को सुन्दर बनाने का अनेक तरीका काम में लाया जाता था । पुरुष लम्बे बाल रखते थे । बालकों के घुंघराले बाल होते थे । काशी के कलाभवन में एक ऐसी मूर्त्ति सुरक्षित है जिसके काकपक्ष दिखलाई पड़ते हैं । मूर्त्तियों तथा चित्रों में स्त्रियों के केश-विन्यास के सैकड़ों सुन्दर प्रकार मिलते हैं । ईसा के पूर्व की तीसरी चौथी सदी में स्त्रियों के बाल का नमूना याक्षी मूर्त्तियों से ज्ञात हो जाता है । पीछे की ओर एक बड़ी गाँठ देने का रिवाज था । स्त्रियां बालों म सुग-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

न्धित तेल लगाकर नाना प्रकार की गाँठ बाँधती थीं। अजंता तथा बाघ के चित्र तथा मथुरा से मिली पक्षियों की मूर्त्तियाँ इस कथन को प्रमाणित करती हैं। शरीर को सुन्दर तथा रमणीय बनाने के लिए आभूषण का भी प्रयोग किया जाता था। हार, कर्णफूल, बाहुदण्ड, कड़ा, करधनी आदि का वर्णन साहित्य में मिलता है और नमूने पत्थर की मूत्तियों में पाए जाते हैं। सिक्कों में राजाओं के हाथ में अंगूठी दिखलाई पड़ती है। वात्स्यायन ने आभूषण का प्रयोग अनिवार्य बतलाया है। अतः पुराने समय के ग्रंथों मे इनका सर्वत्र उल्लेख पाया जाता है। ये सब विवरण भारतीय लोगों के समाज में आनन्दोत्सव तथा सुन्दर रहने के ढंग को बतलाते हैं।

प्राचीन समय में भोजन की कमी न थी। प्रत्येक पदार्थ काफी मात्रा में मिलता था। लोगों की रुचि के अनुसार तरह तरह के भोजन तैयार किये जाते थे। खाद्य वस्तुओं में घी, दूध का प्रयोग सभी लोग खूब करते थे। वैदिक काल में मांस तथा शाकाहारी व्यक्ति पृथक पृथक भोजन किया करते थे। सोमपान का वर्णन वैदिक साहित्य में पाया जाता है पर शराब से इसकी कदापि समता नहीं कर सकते। बौद्धधर्म के कारण अहिंसा के प्रचार से मांसभोजन से घृणा होने लगी। हिन्दुओं ने मांस खाना त्याग दिया। प्रायः सभी शाकाहारी बन गए। साधारणतया चावल, गेहूँ, शक्कर आदि भोजन-सामग्री का नाम मिलता है। गुप्त युग में ब्राह्मणधर्म के अभ्युदय से मद्य-मांस तो दूर रहा, लहसुन-प्याज का खाना निषिद्ध हो गया। फाहियान ने इसका स्पष्ट वर्णन किया है। केवल चाण्डाल मछली खाते थे। ह्वेनसांग ने लिखा है कि समाज में दूध, घी, गेहूँ, चीनी और सरसों के तेल का अधिक व्यवहार होता था। बहुत प्रमाणों पर यह हिसाब लगाया गया है कि प्राचीन समय में एक व्यक्ति अठाईस रुपये में पूरे एक वर्ष अपना निर्वाह कर लेता था। इस अल्प व्यय से यही कहा जा सकता है कि भोजन-सामग्री अत्यन्त सस्ती थी, जिसका अनुमान आधुनिक काल में नहीं किया जा सकता है।

प्राचीन भारत के समाज का विवरण उस समय तक पूरा नहीं हो

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सकता जब तक कि स्त्रियों के स्थान तथा उनकी दशा का वर्णन न किया जायगा। यह तो कहा जा चुका है कि गृहस्थ-जीवन का एक मात्र ध्यय पारिवारिक जीवन को सुखी बनाना था। उसके लिए स्त्रियों को योग्य बनाने के लिए पूर्ण प्रयत्न किया जाता था। वैदिक काल से लेकर हिन्दू शासनकाल तक उनका स्थान समाज में बहुत ऊंचा था। 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता' का सिद्धान्त माना जाता था। वे गृह-लक्ष्मी समझी जाती थीं। वैदिक युग में पुरुषों की तरह स्त्रियों का भी यज्ञोपवीत किया जाता था—पुराकाले तु नारीणां मौजी बन्धनमिष्यते। प्रत्येक यज्ञ में पुरुष स्त्री के साथ ही कार्य किया करता था। उस समय की अनक विदुषी स्त्रियों का नाम मिलता है जिन्होंने वैदिक मंत्र बनाए। शिक्षा तथा पालन पोषण के सभी कार्य बालक तथा बालिकाओं के लिए एक सा सम्पादित किया जाता था। वात्स्यायन ने कामसूत्र में इनके लौकिक तथा पारलौकिक कार्यों का वर्णन किया है। साहित्य में भी स्त्रियों के समाज में ऊँचे स्थान का उल्लेख पाया जाता है। स्त्री को आदर्श पत्नी तथा विदुषी बनाने के लिए प्राचीन समय में शिक्षा पर अधिक जोर दिया जाता था। प्रायः सभी स्त्रियाँ शिक्षा प्राप्त करतीं। निर्धन स्त्रियाँ साधारण तरीके पर शिक्षित होकर पठन-पाठन बंद कर देतीं। पत्रलेखन और आयव्यय का हिसाब रखना ही उनकी शिक्षा की अंतिम सीढ़ी था। ऊँची श्रेणी तक भी शिक्षा का प्रबंध था। ऐतिहासिक ग्रंथों से पता लगता है कि राजकुमारियाँ काफी शिक्षित होकर राज्यप्रबंध करती थीं। मृच्छकटिक नाटक में भली प्रकार पढ़ी लिखी औरतों का वर्णन मिलता है। गुप्तकाल में चन्द्रगुप्त द्वितीय की पुत्री प्रभावती गुप्त उच्च श्रेणी की शिक्षित महिला थी। पुत्रों की बाल्यावस्था में यह राजकार्य का संचालन करती थी। राजाओं के सिक्कों पर राजमहिषी के चित्र अंकित हैं जो बतलाते हैं कि गुप्त नरेशों की रानियां यज्ञ में भाग लिया करती थीं। ऐसे प्रमाणों की कमी नहीं है जो स्त्रियों की उच्च शिक्षा के बारे में उल्लेख करते हैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भारतीय नारियों के कारण ही संतान महापराक्रमी होते थे। उन्हींकी शिक्षा का फल था कि अर्जुन, कर्ण, अभिमन्यु ऐसे महारथी भारत में पैदा हुए।

इस उन्नति का एक यह भी कारण था कि प्राचीन भारत में परदा का सर्वथा अभाव था। प्रायः सभी स्त्रियां सुन्दर वस्त्र पहनकर सार्वजनिक कार्यों में भाग लेती थीं। यज्ञ में भाग लेना, राजकार्य संचालन करना तथा वार्तालाप में भाग लेने का कार्य ऐसा था जो परदा के साथ नहीं हो सकता। विदेशी लोगों ने भारत में इसके अस्तित्व को भी मिटा दिया है। चित्रों को देखने से यह प्रकट हो जाता है कि परदे का अस्तित्व सचमुच न था। स्वयम्वर की प्रथा भी परदे को समूल नष्ट कर देती थी। कालिदास के शकुन्तला तथा अनसूया के वर्णन से यह प्रकट होता है कि परदे का रिवाज समाज में न था। ह्वेनसांग ने राज्यश्री (हर्षवर्धन की बहन) का महायान दर्शन पर वार्तालाप करने का वर्णन किया है। ये सब बातें यही सिद्ध करती हैं कि प्राचीन भारतीय समाज में परदे का नामोनिशान तक न था।

स्मृतिग्रंथों में विवाह की विभिन्न प्रथाओं का वर्णन मिलता है। मनु तथा याज्ञवल्क्य ने आठ प्रकार के विवाहों का उल्लेख किया है—(१) ब्राह्म, (२) दैव, (३) आर्ष, (४) प्राजापत्य, (५) आसुर, (६) गान्धर्व, (७) राक्षस, (८) पैशाच। बहुत सम्भव है कि सभी प्रकार के विवाह प्रचलित न रहे हों। पहले चार प्रकार के विवाहों को उत्तम समझा जाता था। उन्हीं की धानता थी। साधारण जनता में पहले चार प्रकार के विवाहों का ही प्रचार था। गान्धर्व विवाह को बहुत नीच नहीं समझा जाता था, प्राचीन समय में स्वयम्वर तो प्रसिद्ध विवाह का तरीका था। स्त्रियों का विवाह पूरे तौर से युवती होने पर किया जाता था। वाल्यावस्था में विवाह नहीं होते पर यदि किसी ने किया तो उसकी बड़ी निन्दा होती थी। विधवा विवाह का अभाव न था। स्त्री पति के विदेश से न आने पर नियोग कर

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सकती थी। मनु ने 'पुर्नभू' पुत्र का नाम दिया है । सम्भवतः यह विधवा का पुत्र समझा जाता था । इसका समाज में तिरस्कार न किया जाता था पर याज्ञवल्क्य के मतानुसार 'पुर्नभू' दामाद तथा बान्धव के समान समझा जाता था । इससे प्रकट होता है कि विधवा का विवाह होने पर वह समाज से वहिष्कृत न की जाती परन्तु इसे प्रोत्साहन भी न दिया जाता था। इसके अतिरिक्त पति के मरने पर विधवा सती हो जाती थी। विष्णु स्मृति में लिखा है कि विधवा स्त्री के लिए दो आदर्श मार्ग थे। पहला मार्ग सती होना, दूसरा ब्रह्मचारिणी बन के रहना। शुद्ध जीवन बिताने से सती होना अधिक श्रेयस्कर माना गया है। प्राचीन लेखों तथा साहित्य ग्रंथों मे ऐसा उदाहरण मिलता है कि अमुक स्त्री सती हो गयी। एण (मध्यप्रांत) के एक लेख में गुप्त सेनापति गोपराज की स्त्री के सती होने का वर्णन मिलता है। हर्ष नें विन्ध्यकेतु की स्त्री के सती होने का उल्लेख किया है।

समाज में स्त्रियों के आदरणीय स्थान मिलने के कारण ही उन्हें कानूनी हक भी मिले थे। उनके व्यक्तिगत सम्पत्ति के लिए राजनियम बने थे। वह 'स्त्रीधन' कहलाता था । स्मृतिकारों ने स्त्रीधन का उपयोग करने के लिए स्त्रियों को पूरी स्वतंत्रता दे दी थी । उत्तरधिकार-सम्बन्धी नियमों में उनके अधिकार की गणना थी । पति के मरने पर पुत्र न होने पर पत्नी उस सम्पत्ति की उत्तराधिकारिणी होती थी।

अनपत्यस्य पुत्रस्य मातादायमवाप्नुयात् ।

इतिहास में ऐसी घटनाएँ अनेक हैं। गुप्त काल में स्त्रियों के दायाधिकार का प्रमाण मिलता है। इस प्रकार समाज में स्त्रियों को पुरुषों से घट कर स्थान नहीं दिया जाता था । कारण यही था कि दोनों के साथ से समाज समुन्नत हो सका । समाज की शोभा पुरुष स्त्रियों के समान अधिकार में है।

किसी समय के समाज की वास्तविक स्थिति का ज्ञान मनुष्यों के चरित्र से किया जा सकता है। भारतीयों का चरित्र सदा उज्वल तथा पवित्र रहा । विदेशी यात्रियों ने भी भारतीय चरित्र की भूरि भूरि

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्रशंसा की है। मेगस्थनीज़ ने लिखा है कि भारत के लोग सत्यवादी होते थे। बुरी बातों का नाम न था। घरों में ताले नहीं लगते थे। वीरता की प्रसिद्धि तो सभी को ज्ञात है। चीनी यात्रियों ने भी मेगस्थनीज के कथन की पुष्टि की है। अतिथि-सत्कार उनका प्रधान गुण था। भारतीय आदर्श नागरिक थे। कामसूत्र में वर्णित दैनिक जीवन और नाना प्रकार के कार्यों से 'भारतीय चरित' का अनुमान किया जा सकता है।

भारतीय समाज का वर्णन समाप्त करने से पूर्व एक या दो बुराइयों का विवरण देना सर्वथा आवश्यक है। बुरी तथा भली बातें सर्वत्र पायी जाती हैं परन्तु प्राचीन भारत में दास प्रथा और कुछ अन्धविश्वास ही बुराइयों की गणना में आते हैं। किसी न किसी रूप में दास प्रथा वर्तमान थी। हिन्दू समाज में आत्मसमर्पण ही दास प्रथा की उत्पत्ति का सूत्र माना जाता है। दास जो कमा सकता था वह सब मालिक का हो जाता था। उसके साथ स्वामी सदा अच्छा व्यवहार करता था। यहां तक कि वह मालिक के परिवार का एक व्यक्ति हो जाता था। दास स्वामी के प्रतिबन्ध को पूरा कर स्वतंत्र हो सकता था। उचित कार्यों से वह सद्व्यवहार का पात्र बन जाता तथा स्वतंत्र होने का अधिकारी हो जाता था। कहने का तात्पर्य यह है कि वर्तमान समय में उन दासों के मानसिक सुखों का अनुमान नहीं किया जा सकता।

यद्यपि प्राचीन भारत में विज्ञान की काफी उन्नति हो गयी थी तौभी अन्धविश्वास का प्रभाव लोगों के दिल पर बना रहा। किसी न किसी रूप में यह फैला रहा। अथर्व वेद तथा संस्कृत साहित्य में सम्मोहन, पीड़न, मारण, व वशीकरण का वर्णन मिलता है। मानसार में मनुष्यों में प्रचलित भूत-प्रेत, पिशाच तथा बेताल आदि पर विश्वास का वर्णन पाया जाता है। बौद्ध लोगों ने मंत्र-तंत्र को इतना अपनाया कि 'तंत्रसान' नामक संस्था बन गयी। राजाओं में भी भुजा फड़कने का आशय अन्धविश्वास ही माना जा सकता है। परन्तु विज्ञान के सामने इसका अधिक प्रसार न हो सका।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भारतीय दर्शनों का सामान्य परिचय

चार्वाक दर्शन

भारतीय दर्शनों में चार्वाक दर्शन का एक विशेष स्थान है। जहाँ वेदान्त दर्शन में 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः' का सुन्दर उपदेश है वहाँ चार्वाक दर्शन इसके ठीक विपरीत संसार की सत्यता को सिद्ध करता हुआ हमें ब्रह्म के असत्य होने की शिक्षा देता है। 'खाओ, पीओ और मौज उड़ाओ' के सिद्धान्त को माननेवाले लोगों का यह महामन्त्र "यावज्जीवेत् सुखं जीवेत्, ऋणं कृत्वा घृतं पिवेत्। भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः ॥" चार्वाक ही का है, ऐसा कहा जाता है। अपने सिद्धान्त की इसी विलक्षणता के कारण यह दर्शन भारतीय दर्शन के इतिहास में इतना प्रसिद्ध तथा लोकप्रिय हो गया है।

भारतीय दर्शन में 'चार्वाक' शब्द का अर्थ भूतवादी (मेटीरिअलिस्ट) होता है। चार्वाक मतानुयायी एक प्रत्यक्ष को ही सम्यक् ज्ञान का साधन मानते हैं। उनके मत से ज्ञान के अन्य प्रमाण, अनुमान तथा शब्द आदि अविश्वसनीय हैं, क्योंकि वे कभी कभी भ्रमात्मक होते हैं। इसीलिए प्रत्यक्ष प्रमाण के द्वारा ज्ञेय वस्तु को छोड़कर वे अन्य वस्तुओं को सत्य नहीं मानते। प्रत्यक्ष के द्वारा हमें केवल भौतिक संसार का—जो पृथ्वी, अप्, तेज, वायु और आकाश से बना हुआ है—ज्ञान होता है, क्योंकि इसकी सत्ता का हम प्रत्यक्षरूप से ज्ञान करते हैं। संसार की सभी वस्तुएँ इन्हीं पञ्च महाभूतों से बनी हुई हैं। मनुष्य में अभौतिक (जो भूतों से न बनी हो) कोई आत्मा विद्यमान है, ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिलता। मनुष्य भी पञ्च महाभूतों से ही बना हुआ है। जब हम यह कहते हैं कि 'मैं पतला हूँ, मैं मजबूत हूँ, मैं लँगड़ा हूँ,' तब इन वाक्यों से यही सिद्ध होता है कि आत्मा और शरीर एक ही हैं। शरीर

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

Acc. No. 246

में जो चेतना या चैतन्य दिखाई पड़ता है, वह भी शरीर का गुण है, जो कि भूतों (मैटर) से उत्पन्न हुआ है। यह समझना बिलकुल गलत है कि चूँकि भूतों के अवयव अचैतन्य हैं, अतः उनसे बने हुए पदार्थों में चेतना कहाँ से आयेगी। संसार में ऐसे अनेक उदाहरण देख गये हैं जिनमें ऐसे गुण जो अवयवों की पृथकता में अविद्यमान थे वे ही उन्हीं अवयवों के एक विशेष प्रकार से संघात रूप में कर दिये जाने पर विद्यमान होकर दृष्टिगोचर होने लगे। उदाहरणार्थ यह तो प्रसिद्ध ही है कि पान के पत्तों में लाल रङ्ग का अभाव रहता है। परन्तु वही पान का पत्ता चूना और कत्थे के साथ मिला दिये जाने पर लाल रङ्ग को धारण कर लेता है। इसी प्रकार से भूतों के अवयव एक विशेष प्रकार से मिला दिये जाने पर चेतना-समन्वित शरीर को पैदा करते हैं। शरीर के साथ ही चेतना या आत्मा का भी नाश हो जाता है। अतएव चार्वाकों के मतानुसार जब शरीर नष्ट हो जाता है, तब कर्मों के फलस्वरूप दुःख या सुख का अनुभव परलोक में करने के लिए कोई वस्तु अवशिष्ट नहीं रहती, क्योंकि दुःख सुख का अनुभव करनेवाला आत्मा तो शरीर के साथ ही जल कर राख हो जाता है।

इसीलिए ये लोग पुनर्जन्म अथवा मृत्यु के बाद आत्मा की सत्ता को नहीं मानते। इनके मत से ईश्वर की सत्ता भी एक कपोल-कल्पना ही ह। चूँकि ईश्वर इनके प्रत्यक्ष ज्ञान का विषय नहीं है, अतएव वह मिथ्या है। ये लोग संसार की सृष्टि पञ्च महाभूतों के परमाणुओं की समष्टि से मानते हैं, ईश्वर के द्वारा नहीं। अतएव जब ईश्वर न तो जगत् का कर्त्ता ही है और न इसकी सत्ता ही है, तब भला इसको प्रसन्न करने से क्या लाभ ? पूजा-पाठ, यज्ञयागादि से इसे प्रसन्न करना निरी मूर्खता नहीं तो और क्या है ? वेदों में तथा धूर्त पुरोहितों में कभी भी विश्वास नहीं रखना चाहिए, क्योंकि ये लोग जनता के अन्ध विश्वास तथा श्रद्धा का दुरुपयोग कर उनसे अनुचित लाभ उठाते हैं।

चार्वाक दर्शन के अनुसार इस जीवन का अन्तिम लक्ष्य 'खाओ, पीओ

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

और मौज उड़ाओ' है। जैसा कि पहले लिखा जा चुका है इन लोगों के जीवन का महामन्त्र है "यावज्जीवेत् सुखं जीवेत् ऋणं कृत्वा घृतं पिवेत्।" इस जीवन में दुःख भी है, अतएव इसके सुखों से वञ्चित रहना निरी मूर्खता है। अतएव यह प्राणी का कर्तव्य है कि दुःखों से बचने का प्रयत्न करते हुए इस जीवन में जहाँ तक सुख उठा सके, उठावे। अपनी इन्हीं विशेषताओं के कारण यह सम्प्रदाय साधारण भोगप्रिय जनता में अधिक लोकप्रिय हो गया है।

जैन-दर्शन

भारतीय दर्शनों में जैन-दर्शन बहुत ही प्राचीन है। विद्वानों का मत है कि इसका मूल प्राग् ऐतिहासिक काल से चला आता है। इस धर्म के गुरुओं की दीर्घ परम्परा में—जिनके द्वारा यह धर्म संवर्द्धित होता रहा है—चौबीस तीर्थङ्कर हुए हैं जिन में अन्तिम तीर्थङ्कर का नाम वर्द्धमान महावीर था जो महात्मा गौतम बुद्ध के समकालीन थे। इनका नाम तीर्थङ्कर इसलिए पड़ गया कि ये लोग संसाररूपी समुद्र को पार करने के लिए तीर्थ (पार करने योग्य स्थान) को करने या बनानेवाले थे। जैन धर्म का इतिहास इन्हीं चौबीस तीर्थङ्करों का इतिहासमात्र समझना चाहिये।

चार्वाकों के द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त को कि प्रत्यक्ष प्रमाण ही ज्ञान का एकमात्र साधन है, जैन लोग नहीं मानते हैं। उनका यह मत है कि यदि अनुमान और शब्द प्रमाणों को केवल इसीलिए न माना जाय कि वे कभी कभी भ्रमात्मक सिद्ध होते हैं तो प्रत्यक्ष प्रमाण को भी न मानना चाहिए क्योंकि यह भी कभी कभी भ्रमात्मक होता है। इसीलिए जैनी प्रत्यक्ष प्रमाण के अतिरिक्त अनुमान और शब्द प्रमाण को भी सम्यक् ज्ञान का साधन मानते हैं। नैयायिक नियमों की शुद्ध कसौटी पर कसा गया ही अनुमान सम्यक् ज्ञान का द्योतक होता है। शब्द प्रमाण तभी प्रामाणिक माना जाता है जब कि वह आप्त-वाक्य हो। जैनियों का यह मत है कि सर्वदर्शी विमुक्तात्मा तीर्थङ्करों के प्रामाणिक उपदेशों के द्वारा

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ही ऐसी कतिपय आध्यात्मिक वस्तुओं का हमें सच्चा ज्ञान प्राप्त होता है जो कि हमारे सीमित इन्द्रिय-प्रत्यक्ष से नहीं हो सकता।

इन्हीं त्रिविध प्रमाणों की नींव पर जैनी लोग अपनी सृष्टि की रचना की कल्पना को स्थापित करते हैं। इनके मत से प्रत्यक्ष के द्वारा पञ्च महाभूतों की वास्तविकता का पता लगता है। अनुमान के द्वारा वे आकाश, काल, धर्म और अधर्म में विश्वास करते हैं। यहाँ पर धर्म और अधर्म का अर्थ इनका साधारण प्रचलित अर्थ नहीं समझना चाहिये। इन शब्दों का यहाँ अर्थ क्रमशः गमन और स्थिति का कारण जानना चाहिए। लेकिन यह जड़ जगत्—जो कि पञ्च महाभूतों के परिमाणुओं, आकाश, काल, धर्म और अधर्म से बना हुआ है—ही सब कुछ नहीं है। प्रत्यक्ष और अनुमान के द्वारा हमें प्रत्येक प्राणी में आत्मा की सत्ता का भी पता चलता है। जब हम प्रत्यक्ष के द्वारा किसी नारंगी के रंग, आकृति, गन्ध आदि गुणों को देखते हैं तब हम यह कहते हैं कि हम नारंगी की सत्ता को भी देख रहे हैं। उसी प्रकार से जब हम आन्तरिक रूप से दुःख, सुख तथा आत्मा के अन्य गुणों का साक्षात्कार करते हैं तब हमें मानना पड़ता है कि आत्मा भी प्रत्यक्ष प्रमाण के द्वारा प्रत्यक्ष रूप से जानी जा सकती है। आत्मा शरीर के जड़ पदार्थों से बनी है ऐसा स्वीकार नहीं किया जा सकता, क्योंकि चार्वाकानुयायी ऐसा कोई उदाहरण नहीं बतला सकते जिसमें जड़ पदार्थों के समुदाय से बनी हुई वस्तु आत्मा या चैतन्य को उत्पन्न करती हुई देखी गई हो। आत्मा की सत्ता का इस प्रकार से भी अनुमान किया जा सकता है कि यदि कोई चेतन पदार्थ नियन्ता के रूप में न रहे तो जगत् के जड़ पदार्थों के केवल संघात से स्वतः ही शरीर की रचना नहीं हो सकती। चेतना-समन्वित पदार्थ-विशिष्ट के नियंत्रण के अंभाव में शरीर और इन्द्रियाँ इतना नियमपूर्वक काम नहीं कर सकतीं।

जैनियों के अनुसार जितने शरीर हैं उतनी आत्मायें भी हैं। इन लोगों का मत है कि आत्मा केवल मनुष्य और जानवरों में ही नहीं है

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

बल्कि पौधों तथा रज के परमाणुओं में भी है। सब आत्मायें समान रूप से चेतना-समन्वित नहीं होतीं। पौधों में रहनेवाली आत्मा में केवल स्पर्शन चेतना रहती है। मनुष्य तथा अन्य उच्च कोटि के जानवरों में पाँचों प्रकार का इन्द्रिय ज्ञान पाया जाता है। लेकिन शरीर में रहनेवाली आत्मा का ज्ञान सदा सीमित रहता है। इसकी शक्ति भी सीमित ही होती है और यह सब प्रकार के दुःखों का अनुभवकर्ता होता है। परन्तु प्रत्येक आत्मा अनन्त चेतना, शक्ति तथा आनन्द को प्राप्त कर सकती है। ये गुण आत्मा में स्वतः अन्तर्हित होते ह। ये गुण कर्मों के द्वारा उसी प्रकार से आच्छादित रहते हैं जिस प्रकार सूर्य का स्वाभाविक प्रकाश वादलों के द्वारा ढका रहता है। संक्षेप में, कर्मों के द्वारा ही आत्मा बन्धन को प्राप्त करती है। अतः कर्मों के निराकरण से आत्मा स्वतन्त्र होकर अपनी स्वाभाविक पूर्णता को पुनः प्राप्त कर लेती है।

तीर्थङ्करों की शिक्षा तथा चरित्र से सिद्ध होता है कि आत्मा विमुक्त हो सकती है और उस विमुक्ति का मार्ग भी है। जैन तीर्थङ्करों के उपदेश में पूर्ण श्रद्धा, उनके उपदेशों का सम्यक् ज्ञान तथा शुद्ध चारित्र्य—ये तीन बातें आत्मा के बन्धन के निराकरण के लिए आवश्यक हैं। शुद्ध चारित्र्य का अर्थ है अहिंसा व्रत का पालन करना, सत्य तथा अस्तेय का व्यवहार, संयम का पालन तथा विषयों की आसक्ति से दूर रहना। सम्यक् श्रद्धा, सम्यक् ज्ञान तथा सम्यक् चारित्र्य के सम्पन्न करने पर ही विषय-वासनाओं का निरोध हो सकता है तथा उन कर्मों का भी नाश हो जाता है जो आत्मा को अपने बन्धनों से जकड़े रहते हैं।

जैन लोग ईश्वर की सत्ता को नहीं मानते हैं। उनके यहाँ तीर्थङ्कर ही—जिन्हें सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान होने का गुण और गौरव प्राप्त है—ईश्वर माने जाते हैं। वे जीवन के आदर्श रूप में पूजे जाते हैं।

सब जीवों के साथ सहानुभूति तथा दया रखना जैन धर्म का प्रधान सिद्धान्त है। "अहिंसा परमो धर्मः" ही जैन दर्शन का परम मल मन्त्र है। इसके साथ जैन दर्शन सब मतों के लिए आदर दिखलाता है। जैन

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

धर्म में अन्य धर्मों अथवा मतों के लिए जो सहिष्णुता पाई जाती है वह संभवतः अन्यत्र उपलब्ध नहीं है। जैन दार्शनिकों का यह मत है कि प्रत्येक पदार्थ के, भिन्न भिन्न दृष्टिकोणों से देखने से, अनन्त रूप हो सकते हैं। अतएव किसी पदार्थ के प्रति हम अपना जो विचार प्रकट करते हैं वह एक विशिष्ट दृष्टिकोण से देखे जाने पर विशिष्ट अंश में ही सच्चा होता है। अतएव हमें अपने ज्ञान तथा विचार की सीमा को ध्यान में रखते हुए किसी मत-विशिष्ट को ही बिलकुल सच्चा या झूठा नहीं मान लेना चाहिये। सबके मतों का सदा सम्मान करना चाहिये। इसीलिए जैन धर्म के अनुसार सब धर्म किसी अंश में सत्य हैं।

संक्षेप में जैन दर्शन यथार्थवादी (रियलिस्टिक) है क्योंकि यह वाह्य जगत् की यथार्थता को स्वीकार करता है, यह नानार्थवादी (प्लुरेलिस्टिक) है क्योंकि यह सब मतों की सत्यता को स्वीकार करता है, तथा यह नास्तिकवादी है क्योंकि यह ईश्वर की सत्ता को स्वीकार नहीं करता है।

बौद्ध-दर्शन

बौद्ध दर्शन की उत्पत्ति महात्मा गौतम बुद्ध के उपदेशों के द्वारा हुई। गौतम बुद्ध इस जीवन में बीमारी, बुढ़ापा, मृत्यु तथा अन्य दुःखों को देख कर अत्यन्त दुःखी हुए। उन्होंने अपने अनेक वर्ष अध्ययन, तपस्या तथा ध्यान में उस उपाय को ढूढ़ने के लिये बिताया जिसके द्वारा इन सांसारिक दुःखों का नाश हो सके। अन्त में उन्हें "संबोधि" प्राप्त हुई। इस ज्ञान का उपदेश उन्होंने सर्वसाधारण जनता में किया। यह उपदेश चार आर्य सत्य (चत्त्वारि आर्य सत्यानि) के नाम से प्रसिद्ध है। ये चार आर्य सत्य निम्नांकित हैं:—

(१) दुःख है, (२) दुःख का कारण है, (३) दुःख का नाश है, दुःखनाश का उपाय है।

पहिले सत्य को सब लोग किसी न किसी प्रकार से मानते हैं। बुद्ध ने लोगों को यह उपदेश दिया कि संसार की यावत् सत्तात्मक वस्तुओं में तथा सर्व प्रकार के अनुभवों में दुःख वर्तमान है। जो वस्तु देखने में

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

आनन्दजनक ज्ञात होती है उसके अन्तस्तल में भी दुःख निहित है। द्वितीय सत्य के विषय में बुद्ध का यह कहना है कि ये सांसारिक दुःख जन्म धारण के कारण से ही होते हैं। पुनर्जन्म का कारण सांसारिक सुखों के प्रति तण्हा या तृष्णा है। हम लोगों की वासना शक्ति ही हमें संसार की ओर खींच ले जाती है। इस वासना शक्ति का कारण हमारा अज्ञान है। यदि हम सांसारिक पदार्थों की अस्थायिता तथा दुःखात्मकता को अच्छी तरह समझ लें तो फिर उनकी प्राप्ति की इच्छा ही न रहेगी। तब जन्म का अवसान हो जायगा तथा इसके साथ ही दुःख भी नष्ट हो जायँगें। चूँकि दुःख किसी कारण पर अवलम्बित रहता है अतः कारण के नष्ट होते ही कार्य-स्वरूप दुःख का भी नाश हो जाता है। यह तीसरा सत्य है। चौथा सत्य दुःख के नाश का उपाय है और वह उपाय दुःखों के कारणों को अपने वश में रखना है। इस मार्ग या उपाय को "अष्टाङ्गिक मार्ग" कहते हैं क्योंकि इसके आठ अंग होते हैं जिनके नाम हैं—(१) सम्यक् विचार, (२) सम्यक् निश्चय, (३) सम्यक् वाक्, (४) सम्यक् चारित्र्य, (५) सम्यक् जीविका, (६) सम्यक् प्रयत्न, (७) सम्यक् ध्यान, और (८) सम्यक् अवधान। ये आठ अंग अज्ञान तथा तृष्णा को दूर करते हैं, आत्मा को प्रकाशित करते हैं तथा शान्ति को प्राप्त कराते हैं। इस अवस्था की प्राप्ति को निर्वाण कहते हैं।

उपर्युक्त चार आर्य सत्य ही भगवान् बुद्ध के प्रधान उपदेश समझे जाते हैं। इससे स्पष्ट प्रकट होता है कि भगवान बुद्ध दर्शन की समस्याओं को हल करने में उतना व्यस्त नहीं थे जितना कि वे व्यावहारिक जीवन की विषम परिस्थितियों—जिनमें पड़ा हुआ मनुष्य महान् दुःख का अनुभव करता है—को सुलझाने में लगे हुए थे। जब कि मनुष्य अत्यधिक कष्ट को भोग रहा है ऐसे समय में दर्शन की चर्चा करना वे समय को व्यर्थ गँवाना समझते थे। परन्तु फिर भी वे दार्शनिक विषयों की चर्चा अवश्य करते थे। इसीलिये प्राचीन ग्रन्थों में बुद्ध के नाम से संबंधित कुछ

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

दार्शनिक सिद्धान्त पाये जाते हैं जो ये हैं:—(१) सभी पदार्थ सापेक्षिक (कन्डिशनल) हैं अर्थात् कोई वस्तु स्वतः विद्यमान नहीं है। (२) अतएव सभी पदार्थ परिवर्तनशील हैं अर्थात् कुछ भी स्थायी नहीं है। (३) इसलिये न तो कोई ईश्वर है और न आत्मा तथा न कोई अन्य स्थायी पदार्थ है। कर्म सिद्धान्त के अनुसार एक जन्म के बाद दूसरा जन्म इसी प्रकार होता जाता है जिस प्रकार से एक वृक्ष अपने बीजों के द्वारा दूसरे वृक्ष पैदा करता है।

भगवान् बुद्ध के बाद के अनुयायियों ने इन्हीं बीज रूप दार्शनिक सिद्धान्तों को लेकर बौद्ध-दर्शन के चार बड़े बड़े सम्प्रदाय स्थापित कर दिये जिनका विस्तृत विवरण आगे दिया जायगा।

(१) माध्यमिक या शून्यवाद सम्प्रदाय—इस सम्प्रदाय के अनुसार यह संसार मिथ्या (शून्य) है तथा यह सारी सृष्टि भ्रमात्मक है। इसीलिये इसे शून्यवाद भी कहते हैं।

(२) योगाचार या विज्ञानवाद सम्प्रदाय—इस मत के अनुसार संसार के बाह्य पदार्थ मिथ्या हैं। जो बाह्य ज्ञात होता है वह केवल मस्तिष्क की कल्पना है। परन्तु यह मानना पड़ेगा कि मस्तिष्क सत्य है।

(३) सौत्रान्तिक सम्प्रदाय—इस मत के अनुसार बाह्य तथा आन्तरिक दोनों पदार्थ सत्य हैं। मस्तिष्क में स्थित किसी पदार्थ की कल्पना के द्वारा हम बाह्य स्थित उसी पदार्थ की सत्यानुभूति करते हैं। इसीलिये इस मत को "बाह्यानुमेयवाद" भी कहते हैं।

(४) वैभाषिक सम्प्रदाय—यह सम्प्रदाय सौत्रान्तिक सम्प्रदाय की ही भांति बाह्य तथा आन्तरिक पदार्थों की सत्ता को स्वीकार करता है। परन्तु दोनों में अन्तर केवल इतना ही है कि बाह्य पदार्थों के ज्ञान का प्रकार इसके अनुसार दूसरे से विभिन्न है। इस मत को बाह्य प्रत्यक्षवाद भी कहते हैं।

बौद्ध धर्म धार्मिक विषयों में दो प्रधान सम्प्रदायों में विभक्त है, जिनके नाम हीनयान और महायान हैं। हीनयान जिसका प्रचार इस

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

समय दक्षिण देशों मे अर्थात् लंका, वर्मा तथा श्याम में है प्राचीन है तथा महायान जिसका प्रचार उत्तर के तिब्बत, चीन तथा जापान देशों में है उससे अर्वाचीन है। इन दोनों सम्प्रदायों के धार्मिक सिद्धान्तों में महान् अन्तर है जिसका विस्तृत विवेचन अगले पृष्ठों में दिया जायगा।

न्याय दर्शन

न्याय दर्शन के जन्मदाता गोतम हैं। यह दर्शन यथार्थवादी (रियलिस्टिक) दर्शन है जो कि न्याय की दृढ़ भित्तियों पर अवलम्बित है। इसके अनुसार ज्ञान के चार साधन होते हैं (१)—प्रत्यक्ष, (२) अनुमान, (३) उपमान, और (४) शब्द। इन्द्रियों के द्वारा विभिन्न विषयों का जो साक्षात् ज्ञान पैदा होता है उसे प्रत्यक्ष कहते हैं। वह प्रत्यक्ष दो प्रकार का होता है—(१) वाह्य और (२) आन्तर। बाहरी इन्द्रियों अर्थात् आँख तथा कान आदि के द्वारा जो ज्ञान प्राप्त होता है उसे वाह्य प्रत्यक्ष तथा मन जैसे भीतरी इन्द्रिय के द्वारा जो ज्ञान होता है उसे आन्तर प्रत्यक्ष कहते हैं। प्रत्यक्ष से इतर, साध्य में व्याप्ति से रहनेवाले लिङ्ग के द्वारा जो ज्ञान पैदा होता है उसे अनुमान कहते हैं। लिङ्ग का साध्य में साहचर्य नियम से रहने को ही व्याप्ति कहते हैं। अनुमान के प्रकार में तीन वस्तुयें अत्यन्त आवश्यक होती हैं। (१) पक्ष—जिसके विषय में हम किसी वस्तु का अनुमान करते हैं, (२) साध्य—जिसका हम अनुमान करते हैं, (३) लिङ्ग या साधन—जिसके द्वारा, जिसकी सहायता से, हम किसी वस्तु का अनुमान करते हैं। यह लिंङ्ग साध्य व्याप्ति संबंध से रहता हुआ पक्ष में विद्यमान रहता है। एक उदाहरण के द्वारा ये सारी बातें स्पष्ट हो जायेंगी। "यह पर्वत आगवाला है, क्योंकि इसमें धुंआ निकलता है; जहाँ जहाँ धुंआ होता है वहाँ आग अवश्य होती है।" इस उदाहरण में पर्वत पक्ष, अग्नि साध्य और धुंआ लिङ्ग या साधन है, क्योंकि इसके द्वारा पर्वत (पक्ष) में वह्नि (साध्य) का होना पाया जाता है। जहाँ जहाँ धुंआ होगा वहाँ वहाँ आग अवश्य रहेगी यही साहचर्य नियम व्याप्ति के नाम से पुकारा जाता है। अनुमान

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्रकार में व्याप्ति का होना परमावश्यक है।

दो वस्तुओं में उनके रंग, आकृति, नाम आदि के द्वारा जो समानता का ज्ञान होता है उसे उपमान कहते हैं। जैसे—गाय के समान गवय है। यहाँ पर गाय के रूप, रंग तथा आकृति से परिचित मनुष्य जंगल में जाकर उपर्युक्त वाक्य का स्मरण कर यह जान जाता है कि गाय के समान सामने उपस्थित पदार्थ गवय है। यह सादृश्य ज्ञान उपमान के द्वारा प्राप्त होता है। आप्त पुरुषों के वाक्य को शब्द कहते हैं (आप्तवाक्यं शब्दः)। जब कोई कुशल वैज्ञानिक यह कहता है कि जल हाइड्रोजन और आक्सिजन के विशिष्ट अनुपात से मिला देने से बनता है तब हम उसकी बात को स्वीकार कर लेते हैं क्योंकि यह वाक्य आप्त वाक्य है। वैज्ञानिक लोग केवल इन्हीं चार प्रमाणों को मानते हैं।

न्याय के अनुसार प्रमाण की चर्चा कर अब हम प्रमेय की ओर आते हैं। ज्ञान की वस्तु को प्रमेय कहते हैं जो निम्नांकित हैं:—आत्मा, शरीर, इन्द्रिय, बुद्धि, मन, प्रवृत्ति, दोष, प्रेत्यभाव, फल, दुःख तथा अपवर्ग। न्याय दर्शन भी अन्य भारतीय दर्शनों की भांति आत्मा को शरीर, इन्द्रियों तथा उनके विषयों से मुक्त करना चहता है। इसके अनुसार आत्मा शरीर और मन से बिलकुल पृथक् है। यह शरीर केवल जड़ पदार्थों से बना हुआ है। मन सूक्ष्म, अखण्ड और अणु है। यह आत्मा को सुख और दुःख का अनुभव कराने में साधन है। इसीलिये इसे अन्तरिन्द्रिय कहते हैं। न्याय दर्शन के अनुसार तत्त्वज्ञान का सम्यक् ज्ञान हो जाने पर सब प्रकार के दुःखों का नाश ही अपवर्ग है। कुछ मनुष्य अपवर्ग आनन्द की अवस्था ही को अपवर्ग समझते हैं। परन्तु यह उनकी नितान्त भूल है। क्योंकि बिना दुःख के सुख की स्थिति कहीं भी नहीं पायी जाती। अतएव दुःखों का विनाश ही अपवर्ग है।

न्याय दर्शन की विशेषता यह है कि यह ईश्वर की सत्ता को अनेक दृढ़ और अकाट्य प्रमाणों से सिद्ध करता है। नैयायिक लोग कहते हैं कि ईश्वर इस जगत् की सृष्टि, रक्षा और नाश का कारण है। उसने

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जगत् को शून्य से नहीं बनाया बल्कि अणु, आकाश, काल आदि को लेकर बनाया। यह संसार इसलिये रचा गया है कि इसका प्रत्येक जीव अपने कर्मों के अनुसार दुःख या सुख का भोग करे। नैयायिकों का ईश्वरसिद्धि का सबसे प्रसिद्ध प्रमाण यह है :—"संसार की सभी वस्तुयें—पर्वत, समुद्र, सूर्य, चन्द्रमा, और वृक्ष आदि—कार्य हैं क्योंकि ये अणु (टुकड़ों) से बनी हुई हैं। चूँकि संसार की वस्तुओं का कोई न कोई बनानेवाला होता है अतः इनका भी कर्त्ता कोई अवश्य होगा। मनुष्य का ज्ञान तथा शक्ति सीमित होती हैं अतः वह इन महान् पदार्थों का कर्त्ता नहीं हो सकता। अतः सिद्ध है कि इनका कर्त्ता ईश्वर ही है। ईश्वर ने संसार को किसी अपने व्यक्तिगत स्वार्थ के लिये नहीं बनाया प्रत्युत जनता के लाभ के लिये रचा है। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं समझना चाहिये कि संसार में आनन्द ही आनन्द है और दुःख का नामनिशान नहीं है। मनुष्य अपनी स्वतन्त्र आत्मा के द्वारा सुख या दुःख की प्राप्ति करता है। परन्तु ईश्वर की अवधानता और पथप्रदर्शकता में सब मनुष्य सम्यक् ज्ञान की प्राप्ति कर सब दुःख से अन्त में छुटकारा पाकर मुक्ति को प्राप्त करते हैं।

वैशेषिक दर्शन

इस दर्शन की स्थापना कणाद ऋषि ने की थी जिनका असली नाम उलूक था। यह न्याय दर्शन से विशेष रूप से संबंधित है। न्याय की भाँति यह भी जीवन का चरम लक्ष्य जीव की मुक्ति को स्वीकार करता है। यह संसार की समस्त वस्तुओं को सात श्रेणियों में विभक्त मानता हैं। ये सात श्रेणियाँ हैं :—(१) द्रव्य, (२) गुण, (३) कर्म, (४) सामान्य, (५) विशेष, (६) समवाय, और (७) अभाव।

गुण और क्रिया के आश्रय को द्रव्य कहते हैं लेकिन यह दोनों से पृथक् है। द्रव्य नौ प्रकार का होता है—(१) पृथ्वी, (२) अप्, (३) तेज, (४) वायु, (५) आकाश, (६) काल, (७) दिक्, (८) आत्मा, और (९) मन। इनमें से प्रथम पाँच पञ्चमहाभूत कहे जाते हैं और इनमें रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द गुण वर्तमान रहते हैं। इनमें प्रथम चार

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

(पृथ्वी, अप्, तेज, वायु) इन्हीं वस्तुओं के सूक्ष्म परमाणुओं से बने होते हैं जो अखण्डनीय और अविनश्वर हैं। आकाश, दिक् और काल अदृश्य वस्तुयें हैं। ये संख्या में एक हैं, नित्य हैं तथा सर्वव्यापी हैं। मन एक नित्य द्रव्य है जो सर्वव्यापी नहीं है लेकिन अणु की तरह अत्यन्त सूक्ष्म तथा छोटा है। आत्मा एक नित्य तथा सर्वव्यापी द्रव्य है जो कि चेतना का आश्रय है। सर्वश्रेष्ठ आत्मा या ईश्वर कार्य जगत् के कर्ता के रूप में अनुमान किया जाता है।

द्रव्य में रहनेवाली वस्तु को गुण कहते हैं। इसमें स्वतः कोई गुण या क्रिया नहीं होती। द्रव्य स्वतः विद्यमान रहता है अथवा इसकी सत्ता स्वतः सिद्ध है परन्तु गुण की सत्ता बिना किसी द्रव्य के आश्रय के कदापि नहीं हो सकती। वस्तुओं के गुणों में कोई क्रिया नहीं होती। गुण चौबीस प्रकार के होते हैं, यथा—रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, शब्द, संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, द्रवत्व, स्नेह, बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, गुरुत्व, संस्कार, धर्म और अधर्म।

गति को क्रिया कहते हैं। गुण की भाँति यह भी द्रव्य में ही रहती है। क्रिया पाँच प्रकार की होती है, (१) उत्क्षेपण—ऊपर फेंकना, (२) अवक्षेपण—नीचे फेंकना, (३) आकुञ्चन—सिकुड़ना, (४) प्रसारण—फैलना, और (५) गमन—जाना।

समस्त गायों में एक ऐसा सर्वसाधारण पदार्थ पाया जाता है जिससे वे एक जाति में विभक्त कर, दूसरे से पृथक् कर दी जाती हैं। सब गायों में रहनेवाला यह सर्वसाधारण पदार्थ 'गोत्व' है। इसी को नैयायिक लोग सामान्य या जाति कहते हैं। चूंकि 'गोत्व' न तो किसी गाय के पैदा होने से पैदा होता है और न मरने से मरता ही है, अतएव यह नित्य है। अतएव सामान्य वह वस्तु है जो किसी श्रेणी के भिन्न भिन्न व्यक्तियों में समान रूप से रहता है।

वस्तुओं के भेद के आश्रय को विशेष कहते है। अर्थात् जिसके द्वारा दो वस्तुओं की पृथकता का ज्ञान होता है उसे विशेष कहते हैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

साधारणतया हम दो वस्तुओं के भेद को उसके अंगों द्वारा तथा अन्य गुणों से जान लेते हैं। परन्तु पृथ्वी के दो परमाणुओं के भेद को हम कैसे जान सकते हैं? उन दोनों परमाणुओं में कोई आत्यन्तिक भेदकता या विशेष अवश्य होगा जिससे वे पृथक पहिचाने जाते हैं। अतएव संसार के नित्य द्रव्यों मे रहनेवाली विशेषता वा विचित्रता को ही विशेष कहते हैं। इसी 'विशेष' पदार्थ की विशिष्ट व्याख्या के कारण इस दर्शन का नाम ही वैशेषिक पड़ गया।

जिस नित्य संबंध के द्वारा अंग अंगी में, गुण या क्रिया द्रव्य में, और जाति व्यक्ति में रहती है उसे समवाय कहते हैं। कपड़ा तन्तु में; हरा, मीठा और गन्ध गुण तथा विभिन्न प्रकार की क्रिया द्रव्य में इसी समवाय संवंध के द्वारा रहती हैं। अंग अंगी, जाति व्यक्ति, गुण और द्रव्य में रहनेवाले इसी नित्य संवंध को नैयायिकों के द्वारा समवाय की संज्ञा दी गई है।

किसी वस्तु के अभाव को अभाव कहते हैं। यहाँ सर्प नहीं है, वह कमल लाल नहीं है, पानी में गन्ध नहीं है—ऐसे वाक्यों में सर्प, ललाई और गन्ध-विशिष्ट वस्तुओं में अभाव की सूचना है। यह अभाव चार प्रकार का होता है। (१) प्रागभाव, (२) प्रध्वंसाभाव, (३) अत्यन्ताभाव और (४) अन्योन्याभाव। किसी वस्तु के पैदा होने के पहिले उसकी अविद्यमानता को प्रागभाव कहते हैं, जैसे कि कुम्भकार के द्वारा बनाये जाने के पहिले मिट्टी में घट का अभाव। किसी वस्तु के पैदा होने पर उसके नाश हो जाने से उत्पन्न अभाव को प्रध्वंसाभाव कहते हैं, जैसे घड़े के गिरकर फूट जाने पर उसका अभाव हो जाना। दो वस्तुओं में त्रिकाल—भूत, वर्तमान और भविष्य—में भी बने रहनेवाले अभाव को अत्यन्ताभाव कहते हैं, जैसे वायु में रूप का न होना या खरगोश के सिर पर सींग का न रहना। ये तीनों अभाव संसर्गाभाव कहलाते हैं। दो वस्तुओं में जब एक दूसरे का अभाव होता है उसे अन्योन्याभाव कहते हैं, जैसे घट में पट का अभाव और पट में घट का अभाव। यही अन्योन्याभाव है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सांख्य-दर्शन

इस दर्शन के आदि प्रवर्तक कपिल मुनि कहे जाते ह। यह दर्शन पुरुष तथा प्रकृति नामक दो नित्य पदार्थों को मानता है जो अपनी सत्ता के सम्बन्ध में एक दूसरे से स्वतन्त्र रहते हैं। पुरुष एक बुद्धि-समन्वित पदार्थ है, चैतन्य जिसका गुण नहीं बल्कि स्वरूप है। यह शरीर, इन्द्रिय और मन सबसे पृथक् है। यह समस्त संसार के विषयों से परे है। यह नित्य चैतन्य है जो संसार के निखिल कार्यकलापों का द्रष्टा है, परन्तु न तो स्वयं कोई कार्य करता है और न परिवर्तन को ही प्राप्त होता है। पुरुष प्रकृति के द्वारा उत्पन्न किये गये पदार्थों का भोक्ता होते हुए भी पुष्कर पलाशवत् सदा निर्लेप रहता है। सांख्य के पुरुष की दशा उस क्रियाहीन परन्तु बुद्धिमान् आलसी पुरुष की भाँति है जो संसार के भोगों को भोगता हुआ भी न तो सांसारिक कार्यों में लिप्त होता है और न उन्हें करना ही चाहता है। सांख्याचार्यों का यह मत है कि विभिन्न शरीरों के अनुसार पुरुष भी भिन्न होते हैं, क्योंकि संसार में कुछ आदमी दुःखी, कुछ सुखी हैं, कुछ मरते हैं तथा कुछ जीते हैं। अतएव शरीर की बहुलता के साथ ही साथ पुरुष की बहुलता भी माननी पड़ती है।

प्रकृति को कर्त्री मानते हैं, अतएव यह सृष्टि का आदि कारण है। यह जड़, अचेतन, तथा नित्य पदार्थ है जो सदा परिवर्तनशील है तथा इसका उद्देश्य आत्मतृप्ति है। सत्व, रज और तम—ये प्रकृति के तीन अंग हैं जिन्हें प्रकृति सदा साम्यावस्था में बनाये रखती है। ये तीनों गुण नाम से पुकारे जाते हैं। ये प्रकृति के गुण या उपाधि नहीं हैं प्रत्युत उसके आवश्यक अङ्ग हैं। इनके द्वारा उसी प्रकार प्रकृति की सत्ता स्थित है जिस प्रकार तीन तन्तुओं से रस्सी की सत्ता। संसार की समस्त वस्तुओं में पाये जानवाले सुख, दुःख तथा उदासीनता के गुणों के द्वारा ही इन त्रिविध गुणों की सत्ता का अनुमान किया जाता है। इस जगत् में कार्य कारण के द्वारा उत्पन्न किया जाता है, जैसे तैल कार्य है अतएव उसके कारणरूप बीजों में तेल के परमाणुओं की सत्ता अवश्य होगी।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जगत् के समस्त पदार्थ कार्य हैं जिनमें सुख, दुःख तथा उदासीनता के गुण वर्तमान हैं। इसलिये प्रकृति या प्रधान में—जो इन पदार्थों का आदि कारण है—सत्व, रज तथा तम के अंशों का होना आवश्यक है क्योंकि इनकी प्रकृति क्रमशः सुख, दुःख तथा उदासीन की है।

संसार की सृष्टि का प्रारम्भ पुरुष और प्रकृति के संयोग से होता है। यह संयोग प्रकृति की साम्यावस्था को विकृत कर देता है और इसे क्रिया में प्रवृत्त कर देता है। सांख्य के अनुसार सृष्टि का क्रम निम्नांकित है :—

प्रकृति से इस महान् ब्रह्माण्ड का बीज पैदा होता है इसीलिए इसे महत् कहते हैं। पुरुष का चैतन्य इस महत् में प्रतिबिम्बित होकर इसे भी चेतना-सम्पन्न बना देता है। यह प्रकृति की निद्रा का उद्बोधक है। इस लिये इसे बुद्धि भी कहते हैं। बुद्धि के समधिक परिवर्त्तन से ही अहंकार नामक पदार्थ पैदा होता है। इसी से सम्बन्धित होकर पुरुष अपने को कर्ता मानता है जो वास्तव में वह नहीं है। अहंकार के साथ सत्त्व की समधिक मात्रा के मिश्रण से पाँच ज्ञानेन्द्रियों, पाँच कर्मेन्द्रियों और मन (जो उभयेन्द्रिय है) का प्रादुर्भाव होता है। तमोगुण की प्रधानता होने पर अहंकार पंच तन्मात्रा को पैदा करता है जोकि शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध के मूल तत्त्व हैं। इन पंच तन्मात्राओं से आकाश, वायु, तेज, अप् और पृथ्वी इन पंच महाभूतों के तत्वों की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार सांख्य दर्शन में पचीस पदार्थ पाये जाते हैं। इनमें से पुरुष को छोड़ कर शेष सब पदार्थ प्रकृति के ही अन्तर्गत होते हैं। प्रकृति सब पदार्थों का कारण है परन्तु इसका कोई कारण नहीं है। महत्, अहंकार और पंच तन्मात्रा कुछ कार्यों के कारण हैं और कुछ कारणों के स्वयं कार्य हैं। एकादश इन्द्रियाँ और पंच महाभूतों के तत्त्व कुछ कारणों के कार्य हैं परन्तु स्वयं किसी के कारण नहीं हैं। पुरुष न तो किसी पदार्थ का कारण (प्रकृति) है और न कार्य (विकृति) ही है।

ईश्वर की सत्ता के सम्बन्ध में सांख्य दर्शन का मत विशेष महत्व

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

रखता है। सांख्य दर्शन की प्रधान प्रवृत्ति ईश्वर की सत्ता को न मानने की है। इसके अनुसार ईश्वर की सत्ता किसी भी प्रकार से प्रमाणित नहीं की जा सकती। सृष्टि की रचना के लिये इसे ईश्वर को मानने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि प्रकृति ही संसार की उत्पत्ति का आदि कारण है। नित्य और अपरिवर्तनशील ईश्वर जगत् का कर्ता नहीं हो सकता क्योंकि कार्य को उत्पन्न करने के लिये कारण में भी परिवर्तन अवश्य होगा। सांख्य दर्शन के कुछ लेखक और टीकाकार इस बात को सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं कि सांख्य में ईश्वर की सत्ता की गुञ्जाइश है परन्तु वह एक साक्षी के रूप में है संसार के कर्ता के रूप में नहीं।

योग-दर्शन

इस दर्शन के संस्थापक महात्मा पतंजलि हैं। इस दर्शन का साँख्य दर्शन से बड़ा घनिष्ठ संबंध है। यह सांख्य दर्शन की प्रमाण मीमांसा तथा तत्त्व मीमांसा को स्वीकार करता है तथा उसके पचीस गुणों को मानते हुए ईश्वर नामक पदार्थ को और मानता है। इस दर्शन का प्रधान कार्य योग के अभ्यास से विवेकज्ञान की प्राप्ति करना है जिससे अन्ततोगत्वा मुक्ति मिल सके। इस दर्शन के अनुसार विभिन्न चित्तवृत्तियों के निरोध को योग कहते हैं (योगः चित्तवृत्ति निरोधः)। पाँच प्रकार की चित्तभूमि होती है।

(१) क्षिप्त—इसमें मन विषयों में लगा रहता है।

(२) मूढ़—इसमें मन मुग्धावस्था में रहता है जैसा कि निद्रावस्था में होता है।

(३) विक्षिप्त—इसमें चित्त कुछ कम उद्विग्न रहता है। चित्त की इन तीन अवस्थाओं में योग का अभ्यास करना संभव नहीं है।

(४) चौथी चित्तभूमि एकाग्र है। इसमें मन ध्यान की विशिष्ट वस्तु पर सतत लगा रहता है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

(५) निरुद्ध—इस अवस्था में ध्यान की क्रिया भी निरुद्ध या बन्द हो जाती है। चित्तभूमि की ये दो अन्तिम अवस्थायें ही क्रिया के निष्पादन में सहायक होती हैं।

योग या समाधि भी दो प्रकार की होती है। (१) सम्प्रज्ञात और (२) असम्प्रज्ञात। जब ध्यान की विषयभूत वस्तु के ऊपर मन पूर्णतया एकाग्र हो जाता है तब उसे सम्प्रज्ञात समाधि कहते हैं। इस अवस्था में ध्यान के विषय का ज्ञान सदा बना रहता है। ज़ब ध्यान की विषयभूत वस्तु का बिलकुल ज्ञान नहीं रहता, तब मानसिक व्यापार बन्द हो जाते हैं। उसे असम्प्रज्ञात समाधि कहते हैं। अतः इसमें ध्यान के विषय के ज्ञान का अभाव हो जाता है।

योग के आठ अंग होते हैं जिनके पालन से मनुष्य का कल्याण होता है। ये आठ अंग हैं:—(१) यम, (२) नियम, (३) आसन, (४) प्राणायाम, (५) प्रत्याहार, (६) धारणा, (७) ध्यान, (८) समाधि।

हिंसा, असत्य, चौर्य्य, तृष्णा तथा लोभ से निवृत्ति को यम कहते हैं। पवित्रता, संतोष, तपस्या, स्वाध्याय, ईश्वराराधन आदि सद्गुणों के उपार्जन को नियम कहते हैं। दृढ़ तथा आराम देनेवाले आसनों को करना आसन कहलाता है। रेचक, पूरक और कुम्भक की क्रिया से प्राणवायु को रोकना प्राणायाम है। तज्जन्य विषयों से इन्द्रियों को हटाकर अपने वश में रखना प्रत्याहार है। किसी विषय-विशिष्ट पर मन को एकत्र करना धारणा कहलाता है। बिना किसी व्यवधान के किसी विषय पर सतत ध्यान करना ध्यान है। समाधि उस अवस्था को कहते हैं जब चेतना ध्यान के विषय में मग्न होकर अपनी सत्ता खो बैठती है।

निरीश्वर सांख्य से पृथक् करने के लिये योग दर्शन सेश्वर दर्शन भी कहा जाता है, क्योंकि यह ईश्वर की सत्ता को मानता है। यह ईश्वर को ध्यान तथा आत्मानुभव की परा कोटि मानता है। इसके मत से ईश्वर शाश्वतिक, सर्वव्यापी, सर्वद्रष्टा तथा निर्दोष है। योग दर्शन ईश्वर की सत्ता के विषय में यह प्रमाण देता है—जिस वस्तु में कोटि (डिग्री)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

होती है उसमें पराकाष्ठा भी होती है। ज्ञान की कोटियाँ हैं, अतः इसकी पराकाष्ठा भी है। अतएव कोई ऐसी वस्तु होगी जो पूर्ण ज्ञानवान् होगी। यह पूर्ण ज्ञान जिसमें होगा वही ईश्वर है।

मीमांसा दर्शन

मीमांसा या पूर्व मीमांसा दर्शन के संस्थापक महर्षि जैमिनि थे। इस दर्शन का सर्वप्रधान कार्य वैदिक यज्ञयागादि की रक्षा करना है। वेदों की प्रामाणिकता ही यज्ञयागादिकों का आधार है, अर्थात् वेदविहित होने के कारण ही यज्ञयागादि किये जाते हैं। अतएव मीमांसा वेदों को अपौरुषेय मानता है। इसके अनुसार वेद नित्य और स्वतः प्रामाण्य हैं। लिखे गये वेद तो तत्त्वद्रष्टा ऋषियों के अनुभव हैं। वेदों की सत्यता प्रमाणित करने के लिये मीमांसा ने प्रमाण शास्त्र का बड़ा विस्तृत विवेचन किया है तथा बड़े परिश्रम के साथ यह सिद्ध किया है कि वेद स्वतः प्रमाण हैं।

वेद लोगों को जो काम करने का उपदेश देते हैं वही धर्म है, वही ठीक है। वे जिस वस्तु को मना करते हैं वह अधर्म है। इसलिये धर्म को करना और निषिद्ध कार्य को छोड़ देना यही मनुष्य का कर्तव्य है। वेदविहित कार्यों को धन, जन की प्राप्ति की इच्छा से नहीं करना चाहिये, बल्कि अपना कर्तव्य समझ कर ही उन्हें करना चाहिये। नित्य कर्मों को निष्काम रूप से करने से—जो केवल ज्ञान और संयम से ही शक्य है—कर्म के बन्धन नष्ट हो जाते हैं और मृत्यु के बाद मुक्ति मिलती है। मीमांसा के प्राचीन ग्रन्थों में मुक्ति की कल्पना शुद्ध आनन्द या स्वर्ग के रूप में की गई है। परन्तु मीमांसा के अर्वाचीन ग्रन्थों में इसकी कल्पना जन्म का नाश अथवा दुःखों से मुक्ति के रूप में की गई है।

मीमांसकों के मत से परिणाम शील होने पर भी आत्मा नित्य पदार्थ है। क्योंकि यदि आत्मा ही अनित्य रहा तब मृत्यु के बाद किये जानेवाले कर्म सब व्यर्थ हो जायेंगें। मीमांसक जैनों की भाँति आत्मा की नित्यता सिद्ध करने के लिये अनेक प्रमाण देते हैं। परन्तु वे चैतन्य को आत्मा

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

का गुण नहीं मानते। उनके अनुसार आत्मा जब शरीर के साथ संयुक्त होती है तभी चेतना का जन्म होता है। विमुक्तात्मा—जो शरीर से रहित है—चेतना से भी विरहित होती है।

मीमांसा दर्शन के दो प्रधान सम्प्रदाय हैं। पहिला वह है जिसका संस्थापक प्रभाकर था। इसे गुरुमत भी कहते हैं। दूसरा सम्प्रदाय कुमारिल भट्ट का है। इसे भाट्ट सम्प्रदाय के नाम से भी पुकारते हैं। पहले सम्प्रदाय के अनुसार ज्ञान के साधन अर्थात् प्रमाण पाँच प्रकार के हैं—(१) प्रत्यक्ष, (२) अनुमान, (३) उपमान, (४) शब्द, और (५) अर्थापत्ति। इनमें से प्रथम चार प्रमाण तो वे ही हैं जो न्याय शास्त्र में स्वीकृत किये गये हैं तथा जिनका वर्णन पहिले किया जा चुका है। अर्थापत्ति उसे कहते हैं जब हम किसी वस्तु में विरोध को देख कर उसके परिहार के लिए किसी अर्थान्तर की कल्पना करते हैं। जैसे 'मोटा यह देवदत्त दिन में नहीं खाता।' यहाँ पर दिन में देवदत्त नहीं खाता परन्तु फिर भी वह मोटा होता जाता है, यह विरोध दिखाई पड़ता है। अतएव इस विरोध को दूर करने के लिए रात्रि-भोजन की कल्पना करनी पड़ती है। इसे ही अर्थापत्ति कहते हैं। कुमारिल भट्ट के अनुसार इन पाँच प्रमाणों के अतिरिक्त एक प्रमाण और होता है। उसे अनुपलब्धि कहते हैं। इनका कहना है कि किसी घर में जा कर जब कोई कहता है कि 'इस घर में पट का अभाव है' तब इस पटाभाव का ज्ञान उसे प्रत्यक्ष प्रमाण द्वारा नहीं होता। किसी वस्तु का प्रत्यक्ष ज्ञान तभी होता है जब उस वस्तु के द्वारा हमारी इन्द्रिय को उत्तेजना मिलती है। परन्तु पटाभाव के संबंध में यह उत्तेजना नहीं मिलती है। अतएव पटाभाव का प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं हो सकता। अतः पटाभाव का ज्ञान हमें अनुपलब्धि के द्वारा ही होता है।

प्रत्यक्ष ज्ञान के आधार पर मीमांसा शास्त्र संसार की सत्यता में विश्वास रखता है। इसीलिए यह यथार्थवादी (रियलिस्टिक) है। यह आत्मा की अमरता को भी मानता है। परन्तु यह इस बात को नहीं

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मानता कि संसार की रचना करनेवाला कोई ईश्वर भी है। इसके अनुसार संसार की सब वस्तुयें आत्मा के कर्मों के अनुसार प्रकृति से उत्पन्न होती हैं। अतएव मीमांसक ईश्वर के स्थान पर कर्म को ही जगत् की सृष्टि का कारण मानते हैं। प्राचीन आचार्यों ने 'कर्मेति मीमांसकाः' कह कर इस उपर्युक्त सत्य की पुष्टि की है। कर्म का नियम संसार में सर्वत्र व्याप्त है। मीमांसक लोग यह भी मानते हैं कि जब कोई मनुष्य कोई यज्ञ यागादिक करता है तब उसकी आत्मा में अपूर्व नामक वस्तु पैदा हो जाती है जो कर्मों के फल को भविष्य में उत्पन्न करती है। इसी अपूर्व के कारण मनुष्य जन्मान्तर में अपने कर्मों के फलों को भोगता है।

संक्षेप में वेदों की अपौरुषेयता को सिद्ध करते हुये वैदिक यज्ञ यागादिकों का विधान करना ही मीमांसा दर्शन का प्रधान कार्य है।

वेदान्त-दर्शन

भारतीय दर्शनों में वेदान्त दर्शन सबसे अधिक प्रसिद्ध तथा लोकप्रिय है, यह उक्ति अत्युक्ति कदापि नहीं कही जा सकती। सुप्रसिद्ध जर्मन विद्वान डा० पाल डायसन का मत है कि भारत में भारतीय दर्शन के विभिन्न मतों के अनुयायियों की यदि गणना की जाय तो उसमें वेदान्त दर्शन के अनुयायियों की संख्या नब्बे प्रतिशत से कम न होगी। सच पूछा जाय तो अपनी प्रसिद्धि के कारण वेदान्त शब्द समस्त दर्शन का पर्यायवाची शब्द हो गया है। संभवतः इसी लिए 'कलौ वेदान्तिनः सर्वे' इस सुभाषित के लेखक ने दार्शनिक के अर्थ में ही वेदान्ती शब्द का प्रयोग किया है। 'वेदान्त' शब्द का अर्थ वेद का अन्त है। अतएव वेदान्त दर्शन का अर्थ उस दर्शन से है जो वेद के पिछले भागों—उपनिषदों—से सम्बन्ध रखता है। वेदान्त दर्शन का बीज उपनिषदों में स्पष्ट रूप से पाया जाता है। ऋग्वेद के पुरुष सक्त में वेदान्त दर्शन के मूल तत्त्वों का प्रत्यक्षीकरण होता है जिसका विस्तृत विवरण उचित स्थान पर प्रस्तुत किया जायगा। वेदान्त

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

दर्शन को व्यवस्थित रूप प्रदान करने का सारा श्रेय बादरायण व्यास को है जिनका ब्रह्मसूत्र इस दर्शन का आदि ग्रन्थ माना जाता है। इसी ग्रन्थ की टीकायें लिख कर विभिन्न आचार्यों—शंकर, रामानुज, माध्व, वल्लभ आदि—ने अपने विभिन्न सम्प्रदायों की स्थापना की है। यों तो वेदान्त दर्शन के बारह सम्प्रदाय हैं, परन्तु दो ही सम्प्रदाय—शंकराचार्य तथा रामानुजाचार्य द्वारा संस्थापित—प्रधान हैं। पहिले का नाम अद्वैत तथा दूसरे का विशिष्टाद्वैत है। यहाँ पर क्रमशः इन्हीं दोनों का संक्षिप्त परिचय दिया जायगा।

शांकर वेदान्त के अनुसार ब्रह्म सत्य है और जगत् मिथ्या है; जीव ब्रह्म ही है, दूसरी कोई वस्तु नहीं। "ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैवना-परः"—यह इस सम्प्रदाय का मूल सिद्धान्त है। शंकराचार्य का कहना है कि इस संसार में जो कुछ दृष्टिगोचर होता है वह सब ब्रह्म है (सर्वं खलु इदं ब्रह्म)। यह आत्मा ब्रह्म है (अयमात्मा ब्रह्म), तथा यहाँ पर अनेकत्व नहीं है (नह नानास्ति किञ्चन), अर्थात् ब्रह्म के अतिरिक्त किसी भी वस्तु का अस्तित्व सत्य नहीं है। यह आत्मा या ईश्वर ही केवल सत्य है तथा यह सत्, चित् तथा आनन्द का भण्डार है। इन्हीं मूल सिद्धान्तों की नींव पर शंकराचार्य ने अपने अद्वैत सम्प्रदाय की स्थापना की है।

शंकर का मत है कि जब ब्रह्म ही केवल सत्य है तब यह सृष्टि कदापि सत्य नहीं हो सकती। अतएव उसको ब्रह्म की माया से संभत प्रतिबिम्ब मात्र समझना चाहिये। परन्तु प्रश्न यह उठता है कि जब संसार असत्य है तब सत्य क्यों ज्ञात होता है? इसके उत्तर में शंकराचार्य का कहना है कि यह भ्रम माया अथवा अविद्या के कारण होता है। संसार में रज्जु को देखकर सर्प की, तथा शुक्ति में रजत की भावना होती है। परन्तु यह भावना असत्य है क्योंकि यह हमारे अज्ञान के कारण पैदा होती है। हमारा यह अज्ञान सत्य वस्तु के आधार (रज्जु तथा शुक्ति) को छिपा देता है और उसके स्थान पर अन्य की प्रतीति करा देता है। इसी प्रकार से हम संसार को सत्य समझने लगते हैं। परन्तु वह वास्तव में सत्य है नहीं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सत्य की यह भ्रमात्मक प्रतीति हमें माया या अविद्या के द्वारा होती है। जैसे जादूगर के जाल में चतुर मनुष्य नहीं फँसता उसी प्रकार से ज्ञानी पुरुष इस माया के प्रपञ्च में नहीं फँसते।

शंकराचार्य के अनुसार माया ब्रह्म की शक्ति है जिसके द्वारा असत्य वस्तु का सत्य ज्ञान होने लगता है। अतएव माया को ब्रह्म से उसी प्रकार पृथक् नहीं किया जा सकता जिस प्रकार अग्नि की दाहक शक्ति को अग्नि से। ऐसी दशा में प्रश्न यह उठता है कि क्या ब्रह्म कर्तृत्व शक्ति से सम्पन्न नहीं है? इसके उत्तर मे शंकर कहते हैं कि जब तक मनुष्य संसार की सत्यता में विश्वास करता है तब तक ब्रह्म को वह कर्त्ता के रूप में देखता है। परन्तु जब वह जान लेता है कि वास्तव में यह जगत् असत्य है तब वह ब्रह्म को कर्त्ता नहीं मानता। शंकर के मत से व्यावहारिक दृष्टि से संसार सत्य है। वह इसका कर्त्ता, पालयिता और संहर्ता है। उसमें सर्वद्रष्टा तथा सर्वव्यापी होने के गुण भी वर्तमान हैं। अतएव ऐसी दशा में वह सगुण ब्रह्म या ईश्वर कहा जाता है। परन्तु पारमार्थिक दृष्टि से संसार असत्य है, अतएव ईश्वर इसका कर्ता नहीं है। इस दृष्टि से वह निर्गुण तथा निराकार ब्रह्म माना जाता है।

पारमार्थिक ज्ञान की प्राप्ति अविद्या के निराकरण के द्वारा ही हो सकती है और यह निराकरण वेदान्त के द्वारा ही हो सकता है। मनुष्य को अपनी इन्द्रियों तथा मन को वश में रखकर किसी सद्गुरु के यहाँ पढ़ते हुये सत्य की प्राप्ति करनी चाहिये। धीरे धीरे उस मनुष्य को "मैं ही ब्रह्म हूँ (अहम् ब्रह्म)" यह ज्ञान प्राप्त हो जाता है। इस ज्ञान की प्राप्ति ही इस सांसारिक बन्धन से छुटकारा है। यह विमुक्तात्मा ब्रह्म की भाँति आनन्दमय हो जाता है। इसलिए शंकर ज्ञान के ऊपर विशेष ज़ोर देते हुये कहते हैं कि "ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः।"

रामानुजाचार्य के सम्प्रदाय का नाम विशिष्टाद्वैत है। यह शंकराचार्य के अद्वैत से कुछ विशिष्टता लिये हुये है, इसीलिए इसे विशिष्टाद्वैत कहते हैं। रामानुज के मत से यद्यपि केवल ब्रह्म ही सत्य है और इसके

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अतिरिक्त कुछ भी नहीं है फिर भी ब्रह्म के भीतर अनेक सत्य पदार्थ निहित हैं। रामानुज के अनुसार संसार की सृष्टि तथा रचे हुए पदार्थ सब इसी प्रकार सत्य हैं जिस प्रकार ब्रह्म। इसीलिए रामानुज का मत अद्वैत नहीं है बल्कि विशिष्ट अद्वैत है। चेतनात्मक आत्मा तथा अचेतनात्मक जगत् से समन्वित केवल ब्रह्म ही सत्य है। इस ब्रह्म के भीतर अनेक अचेनतात्मक पदार्थ (अचित्) तथा चेतनात्मक आत्मायें रहती हैं। ब्रह्म सर्वद्रष्टा तथा सर्वव्यापी आदि गुणों से समन्वित हैं। जिस प्रकार से मकड़ा अपने शरीर में से ही बुनकर जाला तैयार करता है उसी प्रकार से ब्रह्म अचित् पदार्थ से—जो उसमें वाह्य रूप में विद्यमान है—जगत् की सृष्टि करता है। आत्मा अणु रूप है, चेतन है तथा स्वयं प्रकाश है। प्रत्येक आत्मा कर्म के अनुसार शरीर को प्राप्त करता है। शरीर का त्याग ही आत्मा की मुक्ति समझी जाती है। अज्ञान के द्वारा उत्पन्न कर्म ही बन्धन का कारण होता है। विमुक्तात्मा ब्रह्म के समान हो जाती है, परन्तु ब्रह्म के तद्रूप नहीं हो जाती।

संक्षेप में शंकराचार्य और रामानुजाचार्य के मतों में यही अन्तर है। जहाँ शंकर अद्वैत के पक्षपाती हैं वहाँ रामानुज के अद्वैत में एक प्रकार की विशिष्टता पायी जाती है। परन्तु दोनों का यह मतभेद केवल तत्त्व मीमांसा में ही पाया जाता है।

भारत की धार्मिक भावना

भारत धर्म-प्रधान देश है। संसार में धर्म तथा दर्शन (religion and phliosophy) का ऐसा महत्व अन्यत्र नहीं पाया जाता। यही कारण है कि भारतवर्ष सब देशों का सिरमौर समझा जाता था। शायद ही ऐसा भारतीय हो जो सात्त्विक प्रवृत्ति का होते हुए धर्म के अथाह समुद्र में गोता न लगाता हो। स्वप्न में भी वह शरीर से धार्मिक भावना को पृथक नहीं कर सकता। धर्म एक ऐसा व्यापक शब्द है, जिसके

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

विभिन्न अर्थ समझे जाते हैं। परन्तु यहां पर धर्म शब्द का प्रयोग साधारण भाव में किया गया है। ईश्वर तथा पारलौकिक वातों को ही धर्म के नाम से व्यवहृत किया गया है। भारतवर्ष का प्राचीनतम धर्म वैदिक धर्म के नाम से विख्यात था। इस धर्म में कर्मकाण्ड की प्रधानता थी। इसमे यज्ञ-यज्ञादि पर विशेष ध्यान दिया आता था। दैनिक कार्य में भी पंच-यज्ञ का विधान किया गया था। सर्वसाधारण को इन यज्ञ-विधानों के प्रति बड़ी श्रद्धा थी और ये कार्य स्वर्गप्राप्ति का मार्ग समझे जाते थे। इन्द्र, विष्णु, सोम, अग्नि, वरुण, उषा आदि देवताओं की पूजा बड़े आदर के साथ की जाती थी। ऋग्वेद में ऐसे मंत्र भरे पड़े हैं जो इन देवताओं की प्रार्थना में लिखे गए। अग्नि तथा सोम को मुख्य स्थान प्राप्त था। संहिता तथा ब्राह्मणों के समय में कर्मकाण्ड की प्रधानता थी। उपनिषदों के काल से इसके स्थान में ज्ञान-काण्ड ने लोगों के ध्यान को आकृष्ट किया। दार्शनिक समस्याओं को सुलझाने के लिए जनता ने अपना समय खर्च किया। ईश्वर, आत्मा, जीव, संसार आदि की सत्ता पर विचार होने लगा। ऋषियों ने भिन्न भिन्न दार्शनिक ग्रन्थियों को सुलझाया। ईश्वर तथा जीव की सिद्धि तथा मानव जीवन की असारता पर विचार होने लगे। वैदिक यज्ञों में हिंसा नें जनता के हृदय में घृणा पैदा कर दिया। अतएव वैदिक धर्म का प्रचार क्रमशः कम होने लगा। जनता व्याकुल थी। वह किसी नए मार्ग पर चलना चाहती थी। ऐसे ही समय में बुद्ध तथा महावीर का जन्म हुआ जिन लोगों ने जनता को नये धर्म की शरण लेने की प्रेरणा की।

ईसा पूर्व छः सौ वर्ष में नैपाल राज्य की तराई में कपिलवस्तु नामक नगर में गौतम का जन्म हुआ। बालकपन से संसार की अनित्यता को देख कर उनका चित्त चंचल और खिन्न रहता था। अतएव संसार को छोड़ कर उन्होंने तपस्या के बल पर ज्ञान प्राप्त किया और बुद्ध नाम से विख्यात हुए। सर्वप्रथम काशी के समीप सारनाथ से अपने धर्म का उपदेश (धर्म परिवर्तन) करना प्रारम्भ किया। उनका धर्म मध्यम मार्ग के नाम

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

से पुकारा जाता था। उनका कथन था कि भोग-विलास तथा कठोर तपस्या के बीच का मार्ग ही कल्याणकारक है। बौद्ध धर्मानुयायी वेदों को प्रमाण नहीं मानते। जाति व्यवस्था पर विश्वास न था। प्राचीन वर्णाश्रम धर्म से आस्था जाती रही। चार आर्य सत्य, अष्टांगिक मार्ग आदि को बुद्ध धर्म में बड़ा आदर था। सभी को 'बुद्धं शरणं गच्छामि, संघं शरणं गच्छामि तथा धर्म्मं शरणं गच्छामि' की प्रतिज्ञा लेनी पड़ती थी। प्रारम्भिक बौद्ध धर्म को हीनयान कहते थे। ईसा पूर्व शताब्दियों में शासन करनेवाले राजा बौद्ध धर्मानुयायी थे। कनिष्क के समय से इस धर्म में एक नवीन सम्प्रदाय महायान पैदा हो गया। महायान सम्प्रदायवाले बुद्ध को देवता समझ कर पूजा करते थे। भगवान बुद्ध की अनेक मूर्त्तियां बनीं और साकार उपासना होने लगी। महायान भक्तिप्रधान बन गया। पीछे चल कर बुरे विचारों के कारण इस धर्म का ह्रास होने लगा। तंत्रयान तथा बज्रयान दो और सम्प्रदाय पैदा हुए। भारत के साथ साथ बुद्ध धर्म का प्रचार चीन, एशिया के पूरब तथा लंका व मिश्र देशों तक फैला। परन्तु यह धर्म बहुत काल तक जीवित न रह सका। बुरी भावनाओं ने समाविष्ट होकर इसके महत्व को नष्ट कर दिया और जनता पुनः अपने वैदिक धर्म की ओर झुकने लगी।

बुद्ध के समकालीन भारत में जैनमत का भी प्रचार रहा। महावीर वैशाली के राजकुमार थे। कर्मकाण्ड के विरुद्ध अहिंसा का प्रचार करके महावीर ने जनता को अपनी ओर खींचा। लोगों ने अहिंसा का स्वागत किया। वेदों की पशुहिंसा के विधान को 'अहिंसा परमो धर्मः' के सिद्धान्त से नष्ट किया। इसने भी वेदों की प्रामाणिकता को न माना। इस धर्म ने छः द्रव्य—जीव, पुद्गल, काल, धर्म, अधर्म, आदि को श्रेय बतलाया। जैनी घोर तपस्या के समर्थक थे। इनके यहां चौबीस तीर्थंकरों का जन्म माना जाता है। जैनधर्म में मुख्य दो सम्प्रदाय हैं—दिगम्बर तथा श्वेताम्बर। यों तो भारत में जैनधर्म का प्रचार बहुत हुआ पर बौद्ध धर्म के समान नहीं। इस धर्म को किसी राजा ने न

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अपनाया। जैनधर्म का प्रचार दक्षिण तथा पश्चिमी भारत में हुआ।

इस प्रकार यह प्रकट होता है कि वैदिक धर्म को हटाकर जैन तथा बौद्ध धर्मावलम्बी अपना प्रभुत्व स्थापित करना चाहते थे। यद्यपि इनके कारण वैदिक धर्म का ह्रास हुआ, जनता इन नए मार्गों पर चलने लगी, पर सदा के लिए ऐसी बात न हो पायी । कर्मकाण्ड को छोड़ कर ज्ञान से लोगों को परा संतोष नहीं हुआ । गूढ़ तत्वों का समावेश उनके शुष्क मस्तिष्क में न हो सका। आत्मा परमात्मा के वाद-विवाद को निरर्थक समझते थे। जनता भक्ति की प्रतीक्षा में थी। ऐसे समय में भक्ति-प्रधान भागवत धर्म का उदय हुआ। महाभारत में नारायणीय मत भागवत धर्म के नाम से प्रसिद्ध था। इसमें भक्ति को प्रधान तथा मोक्ष का मार्ग बतलाया गया था। यद्यपि यह धर्म प्राचीन काल से प्रारम्भ हो चुका था पर ईसा की तीसरी सदी (गुप्त राजाओं) से भागवत धर्म की उन्नति हुई। यनानी मेगस्थनीज ने भी इस धर्म का वर्णन किया है। पाणिनि ने भी वासुदेव का नाम उल्लिखित किया है। इसी कारण से भागवत धर्म की प्राचीनता मानने में सन्देह नहीं होता। बौद्ध धर्म पर इसका गहरा प्रभाव पड़ा। संन्यास तथा निवृत्ति-प्रधान हीनयान से कर्म तथा प्रवृतिभाव की उत्पत्ति महायान के रूप में हुई। भक्ति की प्रधानता होने से बुद्ध की साकार प्रतिमा की पूजा होने लगी। अवतारवाद के सिद्धान्त को बौद्धों ने अपनाया और चौबीस अवतार मानने लगे। गुप्त लोग ब्राह्मण धर्म को मानने लगे। अश्वमेघ यज्ञ होने लगा। भक्ति से भरी जनता देवताओं की पूजा करने लगी। वैष्णव धर्म का सर्वत्र प्रचार होने लगा। राजा 'परम भागवत' की पदवी से विभूषित किए गए। वैदिक धर्म राजकीय धर्म हो गया, अतएव ब्राह्मण धर्म का अभ्युदय आवश्यक था। भागवत धर्म पर महायान धर्म का प्रभाव पड़ा और 'अहिंसा' को सभी ने अपनाया। यज्ञ आदि से लोग विमुख होने लगे। बौद्ध मूर्त्तियों की तरह हिन्दू मूर्त्तियाँ भी बनने लगीं। कला के केन्द्रों में विशेषतः सारनाथ में गुप्तकाल से ब्राह्मण मर्त्तियाँ अधिक संख्या में

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तैयार होने लगीं। अशोक की तरह भारत के धार्मिक इतिहास में गुप्त नरेशों का बड़ा कार्य था। वैष्णव धर्म का विकाश खूब हुआ। देवताओं की पूजा धूमधाम से होने लगी। उस समय के लेखों से यह प्रकट होता है कि विष्णुमय जगत हो गया था। मंदिर निर्माण हुए। सिक्कों पर गरुड़ की आकृति बनने लगी। भगवान विष्णु के विभिन्न चौबीस अवतारों की पूजा होने लगी। वराह, चतुर्भुजी तथा शेषशायी विष्णु मूर्त्तियाँ उसका जीता-जागता उदाहरण हैं।

प्रायः सर्वसाधारण हिन्दू के अवतारवाद सिद्धान्त का मखौल उड़ाते हैं। लोगों के विचार में यह तर्करहित बात समझी जाती है। परन्तु वैज्ञानिक लोगों ने इसका अर्थ ठीक समझा है। अवतारवाद से तो सृष्टि के वैज्ञानिक विकाश का भाव प्रकट होता है। मच्छ, कच्छ, मनुष्य के उस समय की स्थिति को बतलाते हैं जब सृष्टि जलमय थी। जल से जीव स्थल पर भी आने लगे। छोट जीव के बाद पशु और मनुष्य का मिश्रित रूप आया। शनैः शनैः मनुष्य का पूर्ण विकाश हो गया और वह बुद्धि का प्रयोग करने लगा। इन तमाम अवस्थाओं में ईश्वरीय सत्ता का कोई न कोई प्रतीक सामने आया और लोगों ने उसे अवतार का नाम दिया। यही कारण है कि यह सिद्धान्त नितांत ग्राह्य है और विश्वसनीय है। विष्णु के चौबीस अवतार के अतिरिक्त अन्य देवी देवताओं की भी पूजा होती रही। शिव, सूर्य और देवियों की मूर्त्तियाँ भी बनने लगीं। यह कहना युक्तिसंगत होगा कि वैष्णव धर्म के अभ्युदय काल में भी बौद्ध तथा जैन धर्म के अनुयायी वर्तमान थे। राजाओं का यह कार्य न था कि अन्य मतावलम्बी व्यक्तियों को देश से निकाल दे। उनमें धार्मिक सहिष्णुता का भाव भरा था। राजा लोग को यह अभिलाषा रहा करती थी कि उनके राज्य में सब धर्मानुयायी शांतिपूर्वक सुखमय जीवन व्यतीत करें। अपने अपने मत को मानने, मार्ग पर चलने तथा गुरुजनों के आज्ञापालन में स्वतंत्रता थी। यह आवश्यक न था कि राजा के धर्म को सभी अपनावें। गुप्त राजाओं ने

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कभी भी इस बात पर जोर न दिया। धार्मिक स्वतंत्रता को अपहरण करना उनका ध्येय न था। यदि भारत के इतिहास पर ध्यान दिया जाय तो मालूम पड़ेगा कि ईसा की कई सदी पूर्व से ी बौद्ध तथा जैन मतों का प्रचार था। जनता में प्रचार के अतिरिक्त बौद्ध राजधर्म हो गया था। अशोक से कनिष्क तक प्रायः भारतीय सम्राट् बौद्ध धर्म के अनुयायी थे। जैनमत को साधारण संख्या में लोगों ने अपनाया था। राजाओं ने अपन सिद्धान्तों का प्रचार तो अवश्य किया पर उन लोगों ने अन्य मतों का निरादर न किया। इसलिए उन सबके समय में सहिष्णुता की भावना थी। ईसा की तीसरी शताब्दी से वैष्णव मत का प्रचार हुआ। गुप्त नरेश परम भागवत की पदवी रखते थे। उस समय कई मतों का प्रचार था। राजा के यहाँ तो जैन कर्मचारी जैनमत को मानते थे पर शासक ने उन्हें धर्मपरिवर्तन के लिए कभी न कहा। यही अवस्था भारत में काफी समय (हिन्दू काल) तक रही। मुसलमानों के आक्रमण के पश्चात् सारी स्थिति बदल गयी।

शासकों के अतिरिक्त सर्वसाधारण जनता को संसार से मोक्ष की ओर ले जाने के लिए और धार्मिक बंधन को दृढ़ करने के लिए ऋषियों ने स्थान स्थान पर तीर्थ निर्धारित किए। वहाँ की यात्रा धार्मिकता को बढ़ानेवाली समझी गयी। संसार के काम से थकावट होने पर तीर्थयात्रा का मार्ग हितकर समझा गया। इससे नया ज़ीवन प्राप्त होता है। लौटने पर नए उत्साह व लगन से सब कार्य किए जाते हैं। ऋषि मुनि पर्वतों और नदियों के किनारे तपस्या करते थे। यह कार्य अन्तःज्ञान तथा मोक्ष के लिए किया जाता था। वेदों को चन्द व्यक्तियों के लिए स्थिर कर दिया। परन्तु राम-कृष्ण के स्थानों को सब के लिए पवित्र माना। अतएव ऋषियों के तपस्या-स्थान तथा देव-सम्बन्धी जगहें तीर्थ मानी गयीं। लाखों की संख्या में लोग तीर्थयात्रा करने लगे। काशी, पुरी, पंढरपुर, गया आदि तीर्थ माने गए। भगवान कृष्ण ने गीता में कहा है कि मैं पर्वतों में हिमालय हूँ। यही कारण था कि बद्रीनाथ तथा

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

केदारनाथ उत्तरी पर्वतीय प्रदेश के तीर्थस्थान बन गए। गंगा के किनारे ऋषियों ने तपस्या किया। इसलिए इस नदी के किनारे अधिक तीर्थ ह। जीवन में तीर्थयात्रा का महत्व होने से प्रायः सभी गृहस्थ इसके लिए इच्छुक रहते हैं। महात्माओं के निवासस्थान भी कभी कभी पुण्यभूमि बन जाते हैं। रामदास का पंढरपुर से, चैतन्य का जगन्नाथपुरी से तथा श्रीरामकृष्ण का दक्षिणेश्वर से सम्बन्ध होने के कारण उपदेश के लिए लोग जाने लगे और ये तीर्थ बन गये। वहीं पर उन लोगों ने अपने आराध्यदेव का दर्शन किया था। इन सब कारणों से तीर्थस्थान शिक्षा तथा विद्या के केन्द्र थे। धीरे धीरे वे स्थान व्यापार के प्रधान केन्द्र बन गए। तीर्थयात्रा की भावना से भारतीयों को पारस्परिक मेल-जोल का समय मिला। इसी विचार को सामने रख कर तथा सम्पूर्ण भारत की ज्ञानवृद्धि के लिए चारों धाम चार कोने पर निश्चित किए गए। उन्होंने कहा—

गंगे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति
नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेस्मिन् सन्निधिंकुरु।

भारत की नदियां पवित्र हैं और भारत की एकजातीयता के प्रतीक हैं। आपस में धार्मिक वार्त्तालाप तथा मेल मिलाप के लिए मेला लगाने की प्रणाली चलायी गयी। सभी तीर्थ में मेला लगता ही है, पर चार में— प्रयाग, हरिद्वार, नासिक तथा उज्जैन में—बारह वर्षों के बाद कुम्भ (बड़ा मेला) का आयोजन किया जाता है जिससे लोगों में निकटता बढ़े और एक दूसरे को समझें। सत्ते धर्म का प्रवाह बढ़ने लगा। भारत में ऐसा कोई भी प्रांत न रहा जहां मेला न लगता हो। इस प्रकार सारे देश में देवत्व-प्राप्ति का मार्ग बतलाया गया।

इसके अतिरिक्त समाज में उत्सव मनाने की प्रथा धार्मिक विचार से खाली नही है। उत्सव या त्योहार किसी दिन विशेष पर मनाया जाता है। उसमें देश के बीरों की कथा भी सन्निहित रहती है। त्योहार तो ईश्वरसम्बन्धी हुआ करते थे, पर पीछे से जीवसम्बन्धी (जैसे राम-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नवमी, विजया दशमी) और प्रकृतिसम्बन्धी—दीपावली, होली आदि मनाए जाने लगे। इन त्योहारों का प्रकृति तथा देवताओं से ही सम्बन्ध है। अतएव ये धार्मिक बातों को बतलाते हैं।

व्यास कथा—अर्थात् कथा बाँचने की प्रणाली भी भारत की प्रचीन बातों में से एक मुख्य धार्मिक कार्य समझा जाता है। इसका इतिहास पुराना है। व्यास कथा से व्यास मुनि से कोई विशेष सम्बन्ध नहीं है। पर उनके चलाए हुए धार्मिक कथाओं का महत्व अब भी कम नहीं है। गद्दी पर बैठ कर प्रधान धर्म की बातें कहना, सन्देह व प्रश्नों का उत्तर देकर सत्य को दृढ़ करना कथाओं का मुख्य ध्येय समझा जाता है। किसी विद्वान का कथन है कि तीर्थयात्रा तथा धार्मिक मेलों का राष्ट्र की संस्कृति को उन्नत करने में कितना बड़ा हाथ है यह बतलाया नहीं जा सकता। विश्व की उत्पत्ति से ही भारतीय लोगों के रगों में यह व्याप्त है। इसने देश को समुन्नत करने में काफी हाथ बँटाया है। भारत की इस संस्था ने, धार्मिकता को सुरक्षित रक्खा, लोगों में देश-प्रेम उत्पन्न किया और विभिन्न मतानुयायी होने पर भी सबको मिलाकर एक सूत्र में बाँधा। धार्मिक व्यक्तियों में तीर्थ करने तथा उत्सव में सम्मिलित होने के लिए उत्साह पैदा हुआ। यहाँ तक कि हम लोग इस सिद्धान्त को मानने लगे कि अधिक संख्या में तीर्थ होने से ही जनता में धार्मिक भाव उत्पन्न होंगे। इससे देश में शांति और वैभव बढ़ेगा।

भारतीय व्यापार तथा मुद्रा नीति

भारत की प्राचीन आर्य सभ्यता की खोज करने के लिए जीवन के सभी अंगों पर दृष्टि डालना आवश्यक है। किसी देश या जाति की सभ्यता का विकसित रूप तब तक नहीं माना जा सकता जब तक कि सभी कार्य सुसंगठित तथा प्रदर्शित न हों। द्रव्य पैदा करना तथा आर्थिक स्थिति को सुधारने की बात सर्वत्र पायी जाती है। अतएव इस बात पर विचार करना आवश्यक हो जाता है कि भारत में आर्य सभ्यता ने, जो

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

किसी समय संसार में सबसे ऊँची सभ्यता मानी जाती थी, अपनी जाति के सुख तथा समृद्धि के लिए कौन कौन से उपायों तथा प्रकारों को काम में लगाया। भारत में प्राचीन समय से ही श्रेष्ठ विचारों द्वारा अर्थ उपार्जन अथवा संग्रह करने की क्रिया प्रचलित थी। प्राचीन साहित्य ग्रंथों का अध्ययन किया जाय तो साफ़ तौर से ज्ञात होता है कि इतिहास के आरम्भ से ही भारतीय सभ्यता में सब प्रकार के उपाय कार्यान्वित किए जाते थे। देश में कृषि का काम होता था। उस समय प्रायः सभी प्रकार के अन्न तथा फल यहां पैदा होते थे। कृषि के लिए समय से वर्षा होती थी। नहरें तथा तालाब के द्वारा भी सिंचाई का प्रबंध था। गो-पालन भी एक श्रेष्ठ कार्य समझा जाता था। आय का एक मुख्य द्वार खेती ही थी। धान, गेहूँ, जौ आदि अन्न अधिकता से पैदा किए जाते। गल्ला, फल, शाक तथा फूलों के नाम प्राचीन ग्रंथों में मिलते हैं जिससे उनके पैदावार की बात स्पष्ट हो जाती है। आर्यों की बढ़ती हुई सभ्यता में खेती की उन्नति के लिए भूमि को नाप कर टुकड़ों में बाँट दिया जाता था। सीमा निर्धारित की जाती थी। सिंचाई के लिए समुचित प्रबंध था। मौर्यकाल से तो इतने ऐतिहासिक प्रमाण मिलते हैं जिससे भारत में सिंचाई की (नहरों आदि की) तरक्की का पूरा हाल मालूम होता है। मेगस्थनीज ने सिंचाई के विषय में विशेष विवरण दिया है। चन्द्रगुप्त ने गिरनार पर्वत (गुजरात) के समीप सुदर्शन नामक बड़ा झील तैयार कराया था। अशोक ने उससे नहरें निकाल कर उत्तरोत्तर उन्नति की। गुप्त सम्राट् स्कन्द ने उसे मरम्मत कराया और उसके वंशज आदित्यसेन की पत्नी ने एक विशाल जलाशय निर्माण कराया। दक्षिण भारत में भी इसकी कमी न रही। शासकों का ध्यान सदा कृषि की ओर रहा।

कृषि के पश्चात् जनता का व्यवसाय व्यापार था। कहीं तो अधिक संख्या में लोग सामग्री तैयार करने में लगे रहते थे। यों तो भारत में गावों की जनसंख्या अधिक थी। प्रायः सभी प्रकार के लोग ग्राम में रहा-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

करते थे। वर्तमान शहरों की तरह नगर कम थे। परन्तु जो जहाँ रहता था वहीं से व्यापार की बातें सोचा करता था। ऋग्वेद में वर्णन मिलता है कि जनता आवश्यकतानुसार सामान तैयार करती थी। उसीको बेंचने तथा खरीदने का कार्य हुआ करता था। उस समय रथ की आवश्यकता होती, अतएव रथ बनानेवाले कारीगर अधिक थे। युद्ध के अस्त्र-शस्त्र भी खूब तैयार किए जाते थे। हल बनाया जाता था। वस्त्र तैयार किया जाता था। नाना प्रकार के आभूषण बनाए जाते थ। लोगों के समीप रहने से बड़े पैमाने पर व्यापार की कोई आवश्यकता न थी। सिक्कों की प्रथा कम थी। सामान के परिवर्तन से ही सब किसी का काम चलता था। इसके पश्चात् ज्यों ज्यों कार्य-कुशलता बढ़ने लगी लोगों में व्यापार की आवश्यकता मालूम होने लगी। सोने के शतमान आदि सिक्के बनने लगे। तरह तरह का कार्य लोगों ने सीख लिया। सूत्रकाल में खेती पर कर लगाए गए। राजा को चुंगी से भी आमदनी होती थी। यह व्यापार की अधिकता को बतलाता है। आने-जाने के मार्ग भी बनने लगे। उन सड़कों से आसानी के साथ सामान आ जा सकते थे। इस प्रकार की हालत ईसा के कई सहस्र वर्ष पहले भारत में मौजूद थी।

कृषि के अतिरिक्त व्यापार की ओर जनता का ध्यान बढ़ने लगा। महाभारत में वर्णन मिलता है कि व्यापारी अपना माल बेचने के लिए समुद्रयात्रा भी करते थ। वहाँ उनको अनेक विपत्तियों का सामना करना पड़ता था।

> वणिग् यथा समुद्राद् यथार्थं लभते धनम्।
> तथा मर्त्यार्णवे जन्तोः कर्मविज्ञानतो गतिः॥ (शां० प०)

यदि उनके जहाज नष्ट हो जाते थे तो अन्य द्वीप में पहुँच कर शरण लेते तब प्राण रक्षा होती थी।

> भिन्नाः नौकाः यथा राजन् द्वीपमासाद्य निर्वृताः
> भवन्ति पुरुषव्याघ्राः नाविका कालपर्यये। (द्रो० प०)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जहाज पर सामान लेकर भारतीय दूर तक जाया करते थे। विद्वानों का कथन है कि आर्य हिन्द महासागर तथा प्रशांत महासागर तक की यात्रा करते रहे। यही कारण है कि पोत को 'यानपात्र' कहा गया है। वर्तमान समय में भी चीनी लोग जहाज को 'यान' कहते हैं। इस प्रकार की यात्रा का वर्णन आदि पर्व में भी मिलता है—

ततः प्रवासिने विद्वान् विदुरेण नरस्तदा
प्रार्थनां दर्शयामास मनोमारुतिगामिनीं
सर्ववातसहां नावं यंत्रयुक्तां पताकिनीम्
शिवे भागीरथी तीरे नरैः विस्रम्भिभिः कृताम्।

महाभारत के अतिरिक्त रामायण के भी वर्णन से मालूम होता है कि लोग कला में निपुण होते थे। अयोध्या तथा लंका नगरी के विवरण से उस समय के लोगों की कारीगरी की बातें मालूम पड़ती हैं। उस समय व्यापार के निमित्त एक पृथक संस्था थी जिसे 'श्रेणी' के नाम से पुकारा जाता था। इस संस्था के नियम ही पृथक होते थे। जो उसकी सदस्यता को स्वीकार करता था, उसे नियमानुकल काम करना पड़ता था। विभिन्न श्रेणी पृथक पृथक व्यापार में लगी रहती थीं। उसके लाभ हानि के जिम्मेदार सभी लोग समझे जाते थे। व्यापारिक श्रेणियों का वर्णन भारतीय साहित्य तथा लेखों में विस्तार के साथ पाया जाता है। बौद्ध साहित्य, जातक ग्रंथों, में विशेष कर स्मृतियों तथा गुप्तकालीन प्रशस्तियों में तो इनकी कार्यशैली का हाल भरा पड़ा है। जातकों में ऐसी अठारह संघटित संस्थाओं का नाम मिलता है जो अनेक व्यापारिक तथा उद्योग धंधे का काम करती थीं। लकड़ी के काम करनेवाली संस्था, धातु के काम करनेवाली, प्रस्तर, बुनने का काम करनेवाली, चमड़े, हाथी-दांत, जौहर, नौका, चित्र आदि आदि के कार्यों को करनेवाली संस्थाएँ थीं। श्रेणी का सारा काम अपने में होता था। झगड़ा निपटारा तथा शिल्प की शिक्षा आदि का प्रबंध उसी संस्था के सदस्यों द्वारा किया जाता था। कुछ लोगों का मत है कि प्राचीन समय में सिक्के तैयार करने की

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जिम्मेदारी शासक ने श्रेणी को दे दी थी। कहने का तात्पर्य यह है कि व्यापार पूंजीपतियों के हाथ में न था। गणपद्धत्ति के ढंग पर काम होता था। इस संस्था के कारण देश में धन की वृद्धि होती थी तथा सब को सुख मिलता था।

भारत में प्रत्येक तरह का सामान तैयार किया जाता था। अधिकतर रेशम, ऊन, मलमल, आदि सूक्ष्म वस्त्र बनते थे। मोती, हीरा हाथी-दांत, सुगंधित द्रव्य, मसाले आदि उनके साथ-साथ विदेशों में जाया करते थे। संसार के सभी देश भारत की ओर सामान के लिए देखा करते थे। उनकी सारी आवश्यक सामग्री भारत से मिलती थी। उसके बदले में सोना यहाँ आया करता था। मिश्र की आधुनिक खोज में वहां की ममियों की कब्रों में भारतीय मलमल मिली है। यही बारीक मलमल अंग्रेजी कम्पनी के समय तक बनती थी जिसे ढाके की मलमल कहा जाता था। वस्त्र का व्यवसाय बड़ा उन्नत था। सुन्दर तथा महीन कपड़े बनते थे। छींट तथा शाल तो पहले से प्रसिद्ध हैं। फाहियान ने लिखा है कि भारत में कपड़े की रंगाई अत्यन्त सुन्दर ढंग से की जाती थी। विदेशी पेरिप्लस ने उल्लेख किया है कि रेशम, कीमती पत्थर, हाथी-दांत, मसाला आदि विदेश में भेजा जाता था। अरब के एक व्यापारी हजरत उमर ने कहा था कि भारत के समुद्र में मोती भरा है। छठीं सदी में अरबवाले भारत से कीमती पत्थर ले जाते थे। बाहर से आनेवाले वस्तुओं में घोड़ा, कपूर, नमक, मूंगा आदि हैं। प्लिनी ने साफ तौर से कहा कि रोमन राज्य (रोम देश—योरप) से करोड़ों रुपये भारत को जाते हैं जिसके बदले में सुख की सामग्री और वस्त्र आदि आता है। इन विदेशियों के कहने के अनुसार भारत का व्यापार बहुत चढ़ा-बढ़ा था। भारतीय व्यापारी विदेशों का धन अपने देश में ले आते थे।

भारतीय व्यापार जल तथा स्थल दोनों मार्गों से होता था। जातकों में इसका विवरण विशेष रूप से मिलता है। चुलक सेठी नामक जातक ग्रंथ में वर्णन मिलता है कि व्यापारी आनेवाले जहाज का माल

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

खरीदते थे। दूसरी जगह ७०० व्यापारियों के डूबने से बचने का उल्लेख पाया जाता है। मिलिन्द प्रश्न में एक स्थान पर लिखा है कि जो व्यापारी बन्दरगाह पर कर दे देता था वह समुद्र में व्यापार कर सकता था। महाजनक की चम्पा से सुमात्रा तथा महेन्द्र की ताम्रलिप्ति से लंका तक समुद्रयात्रा का वर्णन मिलता है। इन सब प्रमाणों से यह ज्ञात होता है कि भारतीय व्यापारी माल लेकर विदेशों तक समुद्र से जाया करते थे। इन व्यापारों के लिए बड़े जहाजों का बनना जरूरी था। उसी अवस्था में पूरब में चीन तक तथा पश्चिम में आफ़्रीका व योरप तक व्यापारी माल ले जा सकते अथवा वहाँ से माल ले आ सकते थे। प्लिनी के बयान से रोम तक जाने की बात सिद्ध होती है। पश्चिमी व्यापार के लिए सुपारा तथा भरौंच प्रसिद्ध बन्दरगाह थे। मालाबार के किनारे से मिस्र तक व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित हो चुका था। भारतीय सिक्के मैडागास्कर द्वीप में मिले हैं तथा रोम के सिक्के भारत में पाए जाते हैं। सिक्कों की प्राप्ति उन देशों से व्यापार की बात को सिद्ध करता है। ईसा की छठीं सदी के ग्रंथ वृहत्संहिता में रोमक (रोम नगर) तथा भरौंच का उल्लेख पाया जाता है। इतना ही नहीं, पांड्य देशों में रोम के सैनिक सेना में नौकरी करते थे। अतः ईसा की प्रथम शताब्दी से ही भारत तथा पश्चिमी देशों में व्यापार स्थापित हो गया था। भारत से पूर्व में जावा, सुमात्रा, स्याम, कम्बोडिया से व्यापार बराबर चलता रहा। कालिदास ने अपने महाकाव्य रघुवंश में जावा सुमात्रा का उल्लेख किया है। इस जलमार्ग की पुष्टि जावा के बोरोबुदूर मंदिर में खुदी हुई मूर्त्तियों से होती है। मंदिर की दीवार पर बड़े-बड़े जहाजों के चित्र अंकित हैं। गुप्त राजाओं के समय में पूर्वी समुद्र में भारतीय व्यापार ने गहरा प्रभाव पैदा कर लिया था। भारतीय प्रायद्वीप, द्वीप समूह तथा चीन देश तक नियमित जलमार्ग स्थापित हो गया था।

इस जलमार्गीय व्यापार से प्रकट होता है कि व्यापारियों के पास

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

आफ़्रीका तथा चीन तक पहुँचने के लिए बड़ी नावें तथा सामुद्रिक जहाज अवश्य थे। जो कुछ भी हो, परन्तु साहित्य तथा चित्रकला के प्रमाण पर यह कहा जा सकता है कि छठीं सदी में (गुप्तकाल में) बड़े जहाजों का निर्माण होता था और लोग उनका उपयोग करते थे। गुजरात में एक जनश्रुति है कि ईसा सन् ६०० ई० में एक राजकुमार पाँच हजार मनुष्यों के साथ जावा पहुँचा। वहां के लोग जलमार्गीय व्यापार से जीविका उपार्जन करते थे। चीनी यात्री फ़ाहियान ने भी अपनी अन्तिम यात्रा भारतीय जहाज द्वारा समाप्त की। वह बंगाल से लंका और वहाँ से सुमात्रा होते चीन को गया। व्यापार के साथ द्वीप समूहों में भारतीय लोगों ने उपनिवेश बनाए। कारण यह है कि भारतीय सभ्यता वहाँ पायी जाती है। इन सब प्रमाणों से सिद्ध किया जा सकता है कि पोत-निर्माण-कला एक ऊंची श्रेणी तक पहुँच चुकी थी। डा० कुमार स्वामी का मत है कि गुप्तकाल में जहाज बनाने की कला बड़ी उन्नत अवस्था में थी। पूर्व में चीन तक और पश्चिम में अरब फारस तक व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित था—

The greatest period of Indian ship-building must have been the Imperial age of Guptas when India possessed great colonies in Java, Sumatra.....and trading settlements in China, Arabia and Persia. (Art and Craft in India)

उनका मत है कि पन्द्रहवीं व सोलहवीं सदी में योरप के जहाजों से भारतीय जहाज बड़े थे। प्राचीन जहाजों की प्रशंसा फ्रांसीसी विद्वान सोलविन ने की है। यों राजा भोज की बनाई हुई पुस्तक 'युक्ति कल्पतरु' में जहाजों के बनाने का विधान लिखा है। इन्हीं बातों के आधार पर यह कहा गया है कि भारत का सामान जहाजों में भर कर विदेशों में जाया करता था।

भारत का व्यापार सर्वत्र फैल गया था। जल मार्ग का वर्णन हो

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

गया है। स्थल से भी सामान योरप तथा मध्य एशिया को जाया करता था। सामग्री गाड़ी या कारवाँ से दूसरे देशों में भेजी जाती थी। जातकों में वर्णन मिलता है कि अनाथपींडक बहुत बड़ा व्यापारी था। उसके लम्बे कारवाँ चला करते थे। काशी के व्यापारी ब्रह्मदत्त का माल दक्षिण में पाँच सौ गाड़ियों में लदकर जाया करता था। तामिल कवि ने लिखा है कि 'कावेरीपट्टम्' नामक स्थान दक्षिण में व्यापार का केन्द्र था। वहाँ यूनान से भी व्यापारी आते थे। जातकों में तीन स्थल मार्गों का वर्णन पाया जाता है जिनपर अनाथपींडक की गाड़ियाँ चला करती थीं। पहला मार्ग श्रावस्ती से पैठान तक था। उसी रास्ते में माहिष्मती, उज्जयिनी, विदिशा, कौशाम्बी और साकेत में ठहरने का प्रबंध था। दूसरा मार्ग श्रावस्ती से राजगृह तक था। इसके बीच में कपिलवस्तु, कुशीनगर, पावा, वैशाली, पाटलिपुत्र तथा नालंद नगर पड़ते थे, जहाँ व्यापारी आराम करते थे। तीसरा मार्ग पर्वत की तलहटी होते श्रावस्ती से तक्षशिला, और वहाँ से मध्य एशिया तक चला जाता था। चौथा काशी से पश्चिमी किनारे तक जाता था। इन स्थल मार्गों के अतिरिक्त नदियों के द्वारा भी व्यापार होता था। गंगा यमुना से कौशाम्बी तक (मगध तक) सामान जाया करता था। इनके अलावा व्यापार विदेह से गान्धार, मगध से सौवीर, भरुकच्छ (भरौंच बन्दरगाह) से ब्रह्मदेश के किनारे तक जाते थे। भारतीय शासकों ने व्यापार की महत्ता को समझ कर बड़ी-बड़ी सड़कें बनवायी थीं। मौर्यकाल में पाटलिपुत्र से अफगानिस्तान तक १,१०० मील लम्बी सड़क तैयार की गयी थी। स्थलमार्ग सर्वथा सुरक्षित थे। चोर डाकू का नाम तक न था। गुप्त काल में पाटलिपुत्र से भरौंच तक व्यापार खूब चलता था। इलाहाबाद होकर उज्जयिनी होते भरौंच बन्दरगाह तक पहुँचते थे। स्थलमार्ग के द्वारा न केवल स्वदेश में पर अरब, बैबिलोनियाँ, मध्य एशिया तक व्यापारी सामान लेकर आया जाया करते थे। रोम तथा सिरिया होकर दक्षिणी योरप तक अथवा आक्सस और कैसपियन सागर होकर

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मध्य योरप तक भारत से लोग जाया करते थे। ये सब बातें बतलाती हैं कि भारत की बनी हुई सामग्री एशिया में चीन तक, योरप में तथा आफ़्रीका में बेंची जाती थीं। वहाँ के लोग भारतीय माल पर निर्भर रहते थे।

व्यापार के साथ साथ देश की मुद्रानीति का घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। जब लोग कारोबार करते हैं तो रुपयों की अधिक आवश्यकता होती है। यदि सिक्के के इतिहास का अध्ययन किया जाय तो यह मालूम पड़ता है कि प्रारम्भिक समय में जब लोग खेती करते थे तो उनके पास सिक्कों का अभाव था। एक किसान अपने अन्न से ही विनिमय कर जरूरत की चीजें खरीदता था। रुपयों की जरूरत न समझी जाती थी। जैसे आजकल गाँवों में होता है कि किसान अन्न देकर कपड़ा, मवेशी आदि भी खरीद लेता है वही विनिमय (barter) की प्रथा पहले भी थी। विनिमय के काम में सुविधा पैदा करने के लिए सिक्के का आविष्कार हुआ। व्यापार बढ़ने पर एक व्यक्ति दर सामान बेचने जाता था तो वहाँ से सिक्के के अतिरिक्त कोई वस्तु नहीं ला सकता था। जिसको आवश्यकता होती थी वह सिक्के सामान देकर खरीदता था। इसी नियम के अनुकूल संसार में सिक्कों का प्रचार काफी समय के बाद हुआ है। विद्वानों में मतभेद है कि सिक्का सर्वप्रथम कहाँ से प्रारम्भ हुआ। भारतीय साहित्य के अध्ययन से पता चलता है कि भारतीय सिक्के सब से पुराने हैं। यद्यपि हजारों वर्ष के पुराने सिक्के मिले नहीं हैं फिर भी साहित्यिक प्रमाणों से यह सिद्ध होता है कि सिक्के अवश्य प्रचलित थे। ईसा से आठ सौ वर्ष पहले के पुराने सिक्के भारत में मिले हैं। सर्वप्रथम मानवसमाज में विनिमय के उपकरण स्वरूप धातुओं का व्यवहार प्रारम्भ हुआ और सुवर्णचूर (gold dust) का प्रयोग होने लगा। परन्तु जैसा कहा गया है धातु के सिक्कों का प्रयोग भारतवर्ष में बहुत पहले प्रारम्भ हो गया। सोने के सिक्के निष्क, चांदी के पुष्प या धरण तथा ताम्बे के सिक्के कार्षापण के नाम से पुकारे जाते थे। श्रुति तथा स्मृतियों में सिक्कों के नाम तथा उनके

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तौल का उल्लेख पाया जाता है। ऋग्वेद संहिता तथा शतपथ ब्राह्मण में सोने के सिक्कों के नाम मिलते हैं। बौद्ध साहित्य में कार्षापण का नाम आता है। आज कल भी हिमालय से ले कर कुमारी अन्तरीप तक तथा ब्रह्मपुत्र से ईरान की सीमा तक चान्दी के लाखों चौकोर और गोलाकार प्राचीन सिक्के मिले हैं। उस समय सिक्कों पर अंकचिह्न करने की प्रथा थी। साहित्य में इन्हीं को धरण या पुण्य कहा गया है। नागौद राज्य में स्थित बरहूत स्तूप पर तथा बोध गया में मंदिर के वेष्टन पर प्रस्तर के खुदे हुए चित्र मिले हैं जो यह बतलाते हैं कि प्राचीन समय में सिक्कों का प्रचार था। उनका कथानक यह है कि अनाथपींडक बौद्ध श्रेष्ठी ने जेत नामक राजकुमार से जमीन खरीदी और उसका मूल्य उस भाग में बिछाए गए सोने के सिक्कों के बराबर था। इन सब बातों पर विचार करने से पश्चिमी विद्वानों की धारणा निर्मूल हो जाती है कि सर्वप्रथम लिडिया देश में सिक्के प्रचलित हुए। कुछ विद्वानों की धारणा थी कि सिकन्दर के आक्रमण के साथ भारत में सिक्कों का जन्म हुआ। बाहरी सिक्कों की नकल पर भारत में मुद्रानीति निश्चित की गयी। परन्तु ऐतिहासिक विद्वानों से यह बात छिपी नहीं है कि सिकन्दर के आक्रमण करते ही तक्षशिला के राजा आम्भि ने यूनानी नरेश को हजारों सिक्के भेंट में दिए थे। यही एक प्रबल प्रमाण है कि भारत में सिक्के पहले ही से प्रचलित थे। अब रैंमसन भी इस बात को मानते ह कि भारत में सबसे प्राचीन सिक्के विदेशी प्रभाव के कारण नहीं बने थे बल्कि स्वयं भारतीय तुलना रीति (तोल) के अनुसार बनने लगे। भारत में चांदी के पत्तरों को छोटे-छोटे चौकोर टुकड़ काट कर सिक्के बनाए जाते थे। यह बात किसी भी प्रकार सिद्ध नहीं हो पाती है कि भारतीय सिक्के के सम्बन्ध में ईरान-वालों के ऋणी हैं। पाणिनि के ग्रंथों से पता चलता है कि पुण्य आदि सिक्कों का प्रचार था। मारशल की तक्षशिला की खुदाई में द्वितीय दियदात के सुवर्ण मुद्रा के साथ चांदी के कार्षापण मिले हैं। ईसा के

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पांच शताब्दी पूर्व भारत में सर्वत्र सिक्कों का प्रचार था । पूर्वी तथा पश्चिमी विद्वानों ने पंच मार्क सिक्कों का पूरा अध्ययन किया है और इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि ये सिक्के राजकर्मचारियों द्वारा अंकित नहीं किए जाते थे, परन्तु श्रेणी सम्प्रदाय राजा की आज्ञा से तरह-तरह आकार तथा चिह्नयुक्त तैयार किया करता था ।

इन पंच-मार्क सिक्कों (कार्षापण) का प्रचार भारतवर्ष में बहुत दिनों तक रहा । बड़े-बड़े राजा अथवा चक्रवर्ती नरेशों ने भी इसमें हस्तक्षेप न किया । उसका कारण यही था कि मुद्रानीति श्रेणी नामक संस्था के हाथ में थी । बौद्ध युग में भी मौर्य राजाओं ने उसी नीति का पालन किया । यद्यपि अर्थशास्त्र में कौटिल्य ने मुद्रा की जांच करने के लिए पदाधिकारी का उल्लेख किया है पर उसका यह अर्थ नहीं कि बादशाह स्वयं अपनी राजधानी में सिक्के ढलवाते थे । भारत में सर्व-प्रथम कुषाण नरेशों ने मुद्रा के तैयार करने का भार अपने सिर पर ले लिया । उन्होंने सोने के सिक्के चलाए । कनिष्क के सिक्के सरहदी सूबे में बहुत मिले हैं । कनिष्क के सिक्के गोल आकार के बनाए जाते थे । एक ओर राजा की आकृति तथा दूसरी ओर पदवीसहित नाम खुदा रहता था । ज्यों-ज्यों भारतीय व्यापार बढ़ता गया, इनका सम्पर्क विदेशियों से और दृढ़ होता गया और सिक्कों की तायदाद बढ़ती गयी । कुषाण लोगों के पश्चात् गुप्त साम्राज्य से पूर्व भारत के पश्चिमी भाग में शकों का राज्य था । उन लोगों ने भी अपन सिक्के चलाए । इसके अतिरिक्त मध्य भारत तथा इस प्रान्त के पश्चिमी भाग में गणतंत्र (प्रजातंत्र) के तरीके पर शासनकार्य होता था । आजकल के अनुसंधान से उन गणराज्य के सिक्कों पर बहुत सी नयी बातों का पता लगा है । कहने का तात्पर्य यह है कि भारतीय पुराने सिक्कों की नकल पर विदेशी तथा गणराज्यों में मुद्राएँ बनती रहीं ।

गुप्त साम्राज्य के अभ्युदय से सारे भारत में नया युग पैदा हो गया । इस काल में सब तरफ उन्नति हुई । इस 'सुवर्णयुग' में भारत

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

से व्यापारी योरप आफ्रीका चीन आदि देशों तक माल ले जाया करते थे। वहाँ से सोना ले आते थे। गुप्तकालीन सोने के सिक्के यह बतलाते हैं कि इस समय मुद्रा नीति सम्राट् के हाथ में थी। स्थान स्थान पर टकसाल थे। सोने, चांदी तथा ताम्बे के सिक्के अनगिनत रूप से तैयार होते रहे। प्रत्येक बादशाह ने अपने समय में एक नए प्रकार का सिक्का चलाया। वे सिक्के किसी विशेष घटना को बतलाते हैं या उस स्थान के सिक्कों की नकल पर तैयार किए गए। जब सम्राट् किसी देश को जीत लेता है तो मुद्रा नीति को शीघ्र बदलने का प्रयत्न नहीं करता। जिस रूप में वहाँ के सिक्के होते हैं वैसा ही ढंग नए राजा को भी काम में लाना पड़ता है। केवल उस पर नाम बदल दिया जाता है। प्राचीन भारत की यह नीति मुसलमानों तथा अंग्रेजी सरकार को भी काम में लानी पड़ी थी। उपर्युक्त कारणों से गुप्त काल में नाना प्रकार के सिक्के तैयार किए गए। गुजरात के सिक्कों में तथा मध्य प्रांत के सिक्कों में अन्तर है। गुप्तों के अश्वमेध सिक्के विजय के द्योतक हैं। इस तरह बहुत प्रकार के सिक्के गुप्तों के टकसाल में बनते थे।

गुप्त राजाओं के सिक्कों की नक़ल पर पश्चिमी तथा दक्षिणी भारत में मुद्रा बनने लगी। हर्षवर्धन, मौखरी, क्षत्रप, आंध्र वंशी राजाओं के भी सिक्के मिलते हैं। विदेशी हूण लोगों ने जब आक्रमण कर कुछ भाग जीत लिया तो उन्होंने अपने नाम के सिक्के चलाए। बंगाल में सिक्कों की अनेक ढेर मिली हैं जिनमें शासन करनेवाले नरेशों के सिक्के मिलते हैं। सातवीं सदी से हिन्दू साम्राज्य के स्थान पर छोटे छोटे स्वतंत्र राज्य स्थापित हो गए। भारत में एकक्षत्र सम्राट का नाम जाता रहा। इन राजाओं ने काश्मीर, कांगड़ा, मध्यभारत, मध्यप्रांत, दक्षिण में अपने अपने सिक्के चलाये। प्रतीहार, चेदी, चालुक्य, गाहड़वाल, चँदेल तथा नेपाल आदि राजवंशों के सिक्के पाए जाते हैं। इन सिक्कों का पृथक पृथक तौल था तथा आकार था। अधिकतर लोगों ने प्राचीन शैली को कायम रक्खा, पर उनका ह्रास ही होता रहा। गढिया नाम के सिक्के

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

उन पुराने सिक्कों के प्रतीक मात्र रह गए।

अंत में यह कहना उचित प्रतीत होता है कि व्यापार की उन्नति सिक्कों की उन्नति का द्योतक है। सिक्कों के प्रकार की कमी व्यापार की हानि को बतलाता है। दोनों मे घनिष्ठ सम्बन्ध है जो पृथक नहीं किया जा सकता। प्राचीन समय में श्रेणी अथवा शासक का यह कर्तव्य था कि सिक्कों के शुद्ध धातु पर ध्यान रक्खे। शुद्ध सोने, चांदी तथा ताम्बे की मुद्राएं बनायी जाँय। कोई टकसाल में मिली धातुओं का सिक्का तैयार करता तो उसे दण्ड दिया जाता था। इस तरह राजा प्रजा का सम्बन्ध शांतिपूर्वक चला जाता था।

भारतीय साहित्य तथा शिक्षा

किसी देश का इतिहास जानने के लिए यह नितांत आवश्यक है कि वहाँ के साहित्य का पूरा अध्ययन किया जाय। साहित्य उस देश तथा उस जाति के विकाश को बतलाता है। मनुष्य की मानसिक कार्यशैली का प्रभाव साहित्य में दिखलाई पड़ता है। साहित्य की उन्नति उस देश की जागृत अवस्था का द्योतक है। किसी देश की संस्कृति का ज्ञान साहित्य-समीक्षा के द्वारा भी किया जा सकता है। अतएव साहित्य की महत्ता को प्रधान स्थान दिया जाता है। इसीमें जातिविशेष के उत्कर्ष का, उसके ऊंच-नीच भावों का, धार्मिक विचारों और सामाजिक संगठन का, ऐतिहासिक घटनाचक्रों तथा राजनैतिक स्थितियों का प्रतिबिम्ब मिल सकता है। जिस जाति में साहित्य का अभाव हो वह असभ्य समझी जाती है। किसी देश के भूतकाल का पूर्ण ज्ञान साहित्य से हो सकता है। जो जाति सभ्यता की दौड़ में दूसरी जाति का मुकाबिला करना चाहती है वह प्राचीन की रक्षा तथा नवीन साहित्य के उत्पादन के लिए विशेष ध्यान दे। इन सब बातों को ध्यान में रख कर भारतीय गौरव की बातें मालूम करने के लिए साहित्य का संक्षेप विवरण आवश्यक

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्रतीत होता है।

भारत का प्राचीनतम ग्रंथ वेद माना जाता है। ज्ञान-भण्डार होने के कारण ही यह इस नाम से विख्यात हुआ। ऋषियों का कथन है कि सृष्टि की उत्पत्ति के साथ वेदों की भी रचना हुई। इसका लेखक मनुष्य न होकर ईश्वर ही समझा जाता है। यही कारण है कि वेदों को अ-पौरुषय कहते हैं। चारो वेदों—ऋक्, यजुर, साम तथा अथर्व – में मनुष्य के जीवन की सारी समस्याओं को हल किया गया है। राजनैतिक, सामाजिक तथा सब सांस्कृतिक बातों का वर्णन उनमें पाया जाता है। ऋषियों ने सूक्ष्म रूप से तमाम बातों को जनता के सामने रखने का प्रयत्न किया है। परन्तु समयान्तर में वेदों का भाष्य किया गया। टीका टिप्पणी लिखकर सबको समझाने की कोशिश की गयी। इस प्रकार के ग्रंथ 'ब्राह्मण' के नाम से पुकारे गए। वेदों के मंत्रों—संहिता—का ज्ञान धीरे-धीरे कम होने लगा। जीवन के प्रथम आश्रम ब्रह्मचर्य अवस्था में सभी पढ़े जाते थे। जो वेद में लिखा है वही धर्म समझा जाता था—(वेदो हि-धर्ममूलो)। हरएक प्रश्न का उत्तर वेदों से दिया जाता था। प्रत्येक वेद के ब्राह्मणों की रचना अलग अलग की गयी। पहले ब्रह्मचारी को सभी पुस्तकें पढ़नी पढ़ती थीं। पर कुछ समय के बाद प्रत्येक के लिए सबका पढ़ना सम्भव न हो सका। अतएव विभिन्न शाखाएँ हो गयीं जिनको उसी शाखा के ब्राह्मण पढ़ने लगे। वाणप्रस्थ आश्रम में जो भाग पढ़ा जाता उसे 'आरण्यक' कहते थे। अन्तिम मार्ग को उपनिषद का नाम दिया गया है। इसमें ईश्वर की विवेचना है। संसार से अलग रहकर यति माया से पृथक करने लिए सबको शिक्षा देता है।

संसार के साहित्य में शायद ही कोई ऐसा प्रसंग हो जिसके तिथि-निर्णय करने के सम्बन्ध में इतना विरोध हो जितना वेदों के सम्बन्ध में है। भारतीय तो इनको अ-पौरुषेय मान कर तिथि का विचार या प्रश्न नहीं उठाते। परन्तु पश्चिमी विद्वान विभिन्न मार्गों से विभिन्न निर्णयों पर पहुँचे हैं। भारत में लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक, ऋग्वेद

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

का समय ईसा पूर्व ६,००० वर्ष निश्चित करते हैं। जैकोबी तथा विन्टरनित्स ने वैदिक साहित्य का आरम्भ क्रमशः ४,५०० वर्ष तथा २,५०० वर्ष ईसा पूर्व माना है। उपनिषदों की रचनाकाल को ध्यान में रखकर विद्वानों ने यह निश्चय किया है कि उपनिषदों से १,५०० वर्ष पूर्व वैदिक साहित्य का प्रारम्भ हुआ। अतः ईसा पूर्व ३,००० वर्ष में वेदों की रचना का ज्ञान होता है। इस तरह यह विषय अभी तक तय न हो सका है और वेदों का रचना-काल अभी एक विवादस्पद विषय हैं।

जैसा ऊपर कहा गया है वेदों का भाष्य ब्राह्मण कहलाया। प्रत्येक वेद के एक न एक ब्राह्मण का नाम प्रसिद्ध हो गया। ऋग्वेद का ऐतरेय ब्राह्मण, ताड्य सामवेद का, कृष्ण यजुर्वेद का तैतरीय तथा शुक्ल यजुर्वेद का शतपथ ब्राह्मणों के नाम उल्लेखनीय हैं। प्रत्येक ब्राह्मण में विशिष्ट अन्तर है। वेदों की भांति ब्राह्मण के पाठों को भी असाधारण धार्मिक श्रद्धा से सुरक्षित रक्खा गया है। इनका भी समय निश्चित करना कठिन है। ब्राह्मणकाल में क्रियात्मक क्षेत्र 'कुरु पंचाल' जनपद हो गया था। इसका धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्र के नाम से विख्यात हो गया। ब्रह्मावर्त में संस्कृति का विकास हुआ जिसे ब्राह्मण संस्कृति कहते हैं। कुछ देवता जो वैदिककाल में गौण थे अब विशिष्ट हो गए।

ब्राह्मणों के परिशिष्ट भाग के रूप में वैदिक साहित्य के वे भाग हैं जिन्हें आरण्यक कहते हैं। सर्वसाधारण उस साहित्य से परिचित न थे पर विशिष्ट शिष्यों को वन में इसे पढ़ाया जाता था। ब्राह्मण धर्म के आदर्श आश्रमों के स्थापित हो जाने पर सहज ही में इन आरण्यकों का पढ़ना बनवासी ऋषियों का कर्तव्य हो गया। उपनिषद भी इनके साथ ऐसे घने तौर पर जुड़े हुए हैं कि उनको पृथक करना कठिन है। उपनिषद वेदान्त हैं क्योंकि वे बाद में बनाए गऐ थे। कहा जा चुका है कि उपनिषदों का विषय दार्शनिक है। इनके कारण ही वेदों का रहस्य लोगों को मालूम हुआ। दो सौ उपनिषदों का सम्बन्ध वेदों से बतलाया जाता है। पर कुछ ही वास्तव में सम्पर्क रखते हैं। अधिकतर उपनिषद

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

दार्शनिक न होकर धार्मिक विषयों या मतों का प्रतिपादन करते हैं। बाद के धार्मिक सम्प्रदायों ने कुछ पीछे से जोड़ दिया । उपनिषदों का विषय ब्रह्मा, आत्मा और ब्रह्माण्ड है। ब्रह्म तथा आत्मा की अमरता का संदेश उपनिषद ही में पाया जाता है ।

वेदों के पश्चात् पठन-पाठन का विषय वेदांग था। उपनिषद में अपरा विद्या के साथ वेदांग की समता की गयी है। वेदांग छः हैं—कल्प, शिक्षा, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष तथा व्याकरण। कल्प साहित्य में प्राचीन-तम सूत्र-ग्रंथ सम्मिलित हैं। कल्प सूत्र जो यज्ञ कर्मों से सम्बन्ध रखते हैं वह श्रौत-सूत्र कहलाते हैं। श्रौत सूत्र, धर्म का इतिहास तथा यज्ञादि के ज्ञान के लिए अत्यन्त उपयोगी है। गृह सूत्रों में मनुष्य के सोलह संस्कारों का वर्णन है। तीसरे धर्मसूत्रों में गृहस्थ और धर्म, वर्ण और आश्रम-सम्वन्धी नियम प्रस्तुत किए गए हैं। कात्यायन, गोभिल, पारस्कर, आश्वलायन, बो ायन, और आपस्तम्भ आदि कल्प साहित्य के रचयिता थे। वैदिक संहिताओं के पाठों का ठीक-ठीक उच्चारण शिक्षा का विषय है। पद-पाठ, गणपाठ आदि शिक्षा के आविष्कार हैं। निरुक्त, छन्द तथा ज्योतिष वेदों में वर्णित विभिन्न बातों के समझने में सहा-यता करते हैं। व्याकरण तो साहित्य की रीढ़ है। प्राचीनतम व्याकरण ग्रंथ पाणिनि का अष्टाध्यायी है। इसमें वैदिक व्याकरण का विचार कम है। कारण यह था कि साहित्य वैज्ञानिक रूप धारण करने लगा। अतएव उसके रूप को समझाने के लिए पाणिनि ने यह ग्रंथ बनाया।

वैदिक साहित्य के बाद जिन ग्रंथों का निर्माण हुआ उसमें इतिहास और पुराण प्रधान थे। शतपथ ब्राह्मण में इतिहास-पुराण नाराशंसी गाथा का उल्लेख पाया जाता है। इससे यह सिद्ध होता है कि ब्राह्मण के समय इतिहास पुराण भी वर्तमान थे। अथर्ववेद में भी ऐसा उद्धरण पाया जाता है। छांदोग्य उपनिषद में इतिहास को पंचम वेद कहा गया है। यहाँ इतिहास से आख्यानों का तात्पर्य है। गाथा में वीरकाव्यों के रचयिता सूत लोगों की कृतियाँ शामिल थीं। अतएव किसी न किसी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

रूप में इतिहास विद्यमान था।

रामायण तथा महाभारत से इनमें अधिक भिन्नता थी। रामायण के रचयिता वाल्मीकि एक ऐतिहासिक व्यक्ति थे और आदि कवि थे। लगभग दो हजार वर्षों से भारतवर्ष में यह सर्वप्रिय ग्रंथ है। इसकी कथा और इसके पात्र आदर्श भाव जागृत करते हैं। महाभारत एक काव्य नहीं है पर संहिता है। कथा तथा उपकथाओं के साथ एक संपूर्ण साहित्य है। उसमें भारत युद्ध का प्रसंग मुख्य है। शताब्दियों के बाद अनेक कथाएँ जोड़ दी गयीं। रामायण तथा महाभारत की कथाओं से सभी परिचित होंगे। इन तमाम बातों को ध्यान में रखकर ये महान् ग्रंथ भारत के प्राचीन इतिहास कहे जाते हैं।

संस्कृत साहित्य का आदि ग्रंथ रामायण माना जाता है। वैदिक तथा शुद्ध संस्कृत साहित्य के बीच काल का यह ग्रंथ द्योतक है। संस्कृत साहित्य वैदिक से न केवल आकार में परन्तु विषय तथा भाव में भिन्न है। वैदिक साहित्य धार्मिक ग्रंथ है पर संस्कृत में सांसारिक बातों का भी समावेश किया गया है। वैदिक ग्रंथ शुद्ध तथा सरल ऋषियों के कथन से भरे पड़े हैं पर संस्कृत में सारी बातें अतिशयोक्ति के साथ मिलती हैं। इसमें पाणिनि के व्याकरण के अनुसार ही भाषा तैयार की जाती रही परन्तु वैदिक साहित्य में यह बात नहीं पायी जाती। संस्कृत साहित्य में अधिकतर काव्यमय ग्रंथ लिखे गए। संस्कृत कवि अधिकतर राज-दरबार में रहते थे तथा राजकवि थे। अनेक ऐसे कवि हुए जिनकी कृतियाँ केवल प्रशस्तियों में मिलती हैं। दरबार में स्वतंत्र जीवन व्यतीत करते हुए उन कवियों ने साहित्य के भण्डार भरे। साहित्य को रसमय बना दिया। यदि शिलालेखों के काव्य को भी ध्यान में रक्खा जाय तो संस्कृत साहित्य का प्रारम्भ ईसा की प्रथम शताब्दी से माना जा सकता है। गुप्तकाल में इसकी उन्नति पराकाष्टा को पहुँच चुकी थी। अश्वघोष ने बुद्धचरित तथा सौन्दरानन्द नामक ग्रंथ लिख कर जनता का ध्यान संस्कृत की ओर आकृष्ट किया। उसी सिलसिले में

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कालिदास, भवभूति, दण्डिन, भारवि आदि का नाम लिया जाता है। कालिदास उनमें सर्वश्रेष्ठ समझे जाते हैं। वाण का भी नाम गद्य-लेखकों में विशेषतया उल्लेखनीय है। इन समस्त कवियों के आश्रयदाता गुण-ग्राही शासक थे तथा स्वयं विद्वान भी थे। सारे ग्रंथों में कुमारसम्भव तथा रघुवंश दोनों महाकाव्य सर्वप्रसिद्ध हैं। शकुन्तला नाटक संसार में एक विख्यात ग्रंथ माना जाता है और प्रायः सभी भाषाओं में इसका अनुवाद हो चुका है। गुप्तकाल के स्वर्णयुग में संस्कृत साहित्य की अत्यन्त उन्नति हुई। सब प्रकार के ग्रंथ—दर्शन, विज्ञान तथा अन्य विषयों पर भी लिखे जाने लगे। पुराणों का संस्करण निकाला गया। इस प्रकार साहित्य की उन्नति प्रत्येक प्रकार से हुई। ज्योतिष में आर्य भट्ट, बराहमिहिर के नाम गर्व से लिये जाते हैं। वृहत्संहिता ज्योतिष का प्रामाणिक ग्रंथ माना जाता है। आयुर्वेद में चरक ने विशिष्ट सिद्धान्तों को सबके सम्मुख उपस्थित किया। षड् दर्शन, अठारह पुराण, वैदिक साहित्य-विषयक अनगिनत ग्रंथों की रचना हुई। सबके विषय में कहने के लिए यहाँ पर स्थान नहीं है और कहना असंगत भी होगा। इतना कहना पर्याप्त होगा कि संस्कृत साहित्य में प्रत्येक विषय पर कोई न कोई लिखनेवाले वर्तमान थे। चाहे उनके ग्रंथ आज उपलब्ध हों या गाढ़ अन्धकार में छिपे हों। ईसा की सातवीं शताब्दी तक प्रशंसनीय कार्य होता रहा।

इस विषय को समाप्त करते हुए बौद्ध साहित्य के विषय में कुछ कहना असंगत न होगा। संस्कृत साहित्य में ब्राह्मण धर्मावलम्बियों ने ही कार्य किया। परन्तु ईसा पूर्व ६०० से भारत में बौद्ध धर्म के उदय होने पर जनता में वैदिक साहित्य का पठन-पाठन बंद हो गया। बहुत समय तक बुद्ध भगवान के उपदेश लिखे नहीं गए। राजधर्म होने के कारण भिक्षुओं के अनुसार ही सबका आचरण हो गया। समयान्तर में जो पुस्तकें लिखी गयी उन्हें त्रिपटक कहते हैं। ये त्रिपटक अर्धमागधी में लिखे गए थे। ईसा की चौथी सदी में ब्राह्मण धर्म का प्रभाव बुद्ध धर्म पर हो गया और हीनयान का महायान रूप में परिवर्तन हो गया।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

महायान के अभ्युदय के साथ साथ बुद्ध धर्मावलम्बियों ने संस्कृत को अपनाया और उनके ग्रंथ इसी भाषा में लिखे गए । बौद्ध साहित्य में धार्मिक विषयों के अतिरिक्त सांसारिक बातों पर भी प्रकाश डाला गया। विनय तथा अभिधम्म के सिवाय बुद्ध के पूर्व जीवन को लेकर (अवतारों की कथा) जातक ग्रंथ लिखे गए । भिक्षुओं ने संस्कृत मे अनेक ऐसे ग्रंथ लिखे जिनका सीधा सम्बन्ध उस धर्म से न था । दिङ्नाग, धर्मपाल, चन्द्रकीर्ति, बुद्धघोष, चन्द्रगोमिन, तथा कुमारजीव आदि आचार्यों के रचित ग्रंथ भरे पड़े हैं । इन मार्गो से संस्कृत साहित्य की अधिक अभिवृद्धि हुई ।

भारत में संस्कृति को चरम सीमा तक ले जाने में जैन मुनियों ने भी सहायता की । यह काल जैन साहित्य के इतिहास में स्वर्ण युग कहलाने योग्य है । जैन धर्म का उदय तो बौद्ध धर्म के साथ साथ हो चुका था । जनता में इसका प्रचार भी हो गया । परन्तु जैन आगम गुप्तकाल में लिपिबद्ध हुए । जैन न्याय को क्रमबद्ध करने का श्रेय इसी काल को है । जैन कवियों तथा दार्शनिकों का विशेष परिचय देना कठिन तथा विषयान्तर होगा । भगवान महवीर के उपदेशों को आगम कहते हैं । सिद्धसेन दिवाकर जैन न्याय के जन्मदाता थे । समन्त भद्र तथा देवनन्दि भी जैन दर्शन के विख्यात आचार्य थे । इनके अतिरिक्त अनेक विद्वानों ने संस्कृत साहित्य की श्री-वृद्धि की ।

ऊपर कथित विवरण से भारतीय साहित्य के भण्डार का कुछ अनुमान किया जा सकता है । इस साहित्य में प्रत्येक विषय पर प्रकाश डाला गया है, पुस्तकें लिखी गयी हैं तथा इहलौकिक और पारलौकिक उन्नति के लिए प्रयत्न किया गया है ।

शिक्षाप्रणाली

भारत में शिक्षा का कार्य अत्यन्त प्राचीन काल से पाया जाता है । शिक्षा का प्रारम्भ भी धार्मिक कृत्य के साथ किया जाता था । आजकल

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

शिक्षा का प्रारम्भ अक्षरारम्भ से समझा जाता है परन्तु वैदिक काल में इस प्रकार का कोई धर्म का काम नहीं किया जाता था। उस समय के धार्मिक कृत्य को 'उपनयन' कहते थे। इस शब्द का अर्थ यही था कि इस संस्कार के बाद बालक गुरु के समीप शिक्षा के लिए लाया जाता था। वेदों में उपनयन का क्या सिद्धान्त था इसको निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता परन्तु स्मृति ग्रंथों में उपनयन से दूसरा जन्म माना जाता था। इसी कारण ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य द्विज कहलाए। यहाँ तक कि शिक्षा के कार्य आरम्भ करते समय विद्यार्थी को हरएक अवस्था में उपनयन करना पड़ता था। वैदिक शिक्षा कण्ठगता थी। अतएव छोटी अवस्था से ही शिष्य को उच्चारण की विधि बतलायी जाती। इसकी परम्परा मौखिक रूप से ही चली आ रही है। जब लेखन-कला का जन्म हुआ तो उसके साथ व्याकरण आदि शास्त्रों का विकास हुआ। वेद को कंठस्थ करने से पूर्व कुछ प्रारम्भिक शिक्षा अनिवार्य समझी जाने लगी। उसी काल से उपनयन से शिक्षा का आरम्भ न होकर विद्यारम्भ से होने लगा। पीछे चलकर विभिन्न वर्णों के लिए गुरु के समीप जाने का अवसर पृथक हो गया। अतएव द्विज वर्णों के लिए उपनयन का समय अलग-अलग निश्चित हो गया। मनु आदि ने उपनयन से रहित व्यक्ति को 'व्रात्य' कहा है। इससे बचने के लिए उपनयन के बाद शिष्य शिक्षा प्राप्त करने गुरु के पास जाने लगा।

धार्मिक कृत्य को समाप्त कर विद्यार्थी गुरु के पास विद्याभ्यास के लिए जाया करता था। प्राचीन काल में दो कार के गुरु थे। आचार्य जो निःशुल्क शिक्षा देते थे। साधारणतया आचार्य जंगल में रहा करते थे। शिष्य आचार्य के सभी कार्य को करता तथा भिक्षा माँग कर गुरु के तथा स्वयं अपने भोजन का प्रबंध करता था। दूसरे प्रकार के शिक्षक का नाम उपाध्याय था। वह विद्यार्थी से शुल्क (फ़ीस) लेकर शास्त्रों का ज्ञान कराता था। वह अधिकतर गृहस्थ हुआ करता था। शिष्य के भोजन, निवासस्थान तथा अन्य आवश्यक वस्तुओं का प्रबंध करता था। निर्धन

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

विद्यार्थी गुरु के गृह-कार्य को करता और विद्याभ्यास करता था। प्राचीन ग्रंथों में कहीं भी गुरु के वेतन का उल्लेख नहीं मिलता। उस समय अधिकतर ब्राह्मण ही शिक्षक का कार्य करते थे। पर यह कोई निरपवाद नियम न था। जनक, प्रवाहन, जैवलि और अश्वपति सरीखे क्षत्रिय शासकों ने भी शिक्षक का कार्य किया था। द्विजमात्र को वैदिक शिक्षा ग्रहण करने का अधिकार था।

प्रत्येक वर्ष के श्रावण मास से शिष्य अपना पठन-पाठन प्रारम्भ करता था। इसे उपाकर्म अथवा श्रावणी कहा जाता था। प्राचीन समय में जब केवल वेदों का ही अध्ययन किया जाता था तो विद्यार्थी छः मास गुरुगृह में विद्याभ्यास करता था। पौष मास तक वार्षिक कार्य समाप्त कर उत्सर्जन किया जाता था। उपनिषद् काल में जब वेदांग का अध्ययन भी प्रारम्भ हो गया तो केवल छः मास में कार्य न हो कर वर्ष भर तक शिष्य कोपठन-पाठन जारी रखना पड़ता था। पहले चारों वेद, फिर दूसरे भाग मेंवेदांग—व्याकरण, छंद, निरुक्त, कल्प, शिक्षा तथा ज्योतिष की शिक्षा दी जाती थी। समयान्तर में इन विषयों के अतिरिक्त इतिहास, पुराण, नाराशंसिगाथा का नाम पाठ्यक्रम में सम्मिलित कर लिया गया। छांदोग्य उपनिषद में इस पाठ्यक्रम का वर्णन मिलता है जिससे ज्ञात होता है कि वेदांग के अतिरिक्त धनुषकला, सर्पविद्यानिधिकला आदि की शिक्षा दी जाने लगी। यज्ञ आदि में सूक्ष्मविचार के कारण वेदाध्ययन ब्राह्मण जाति में सीमित रह गया और अन्य जातियाँ धनुषकला, धर्मशास्त्र, कौशलकला की ओर आकृष्ट हो गयीं। महाभारत तथा रामायण में इनके पढ़ाए जाने का उल्लेख मिलता है। इसी काल (वेदोत्तर काल) में इन विद्याओं का विकास हुआ और सबका ध्यान उसपर चला गया। गुरुगृह अथवा गुरुकुल में बारह वर्ष तक लगातार विद्याभ्यास किया जाता था। इस अवधि में विद्यार्थी वेदों का ज्ञान कर सकता था। सभी शास्त्रों को पढ़ने के लिए बहुत अधिक समय की आवश्यकता थी। चीनी यात्रियों ने इस बात का वर्णन किया है कि कुछ ब्रह्मचारी जीवन भर गुरु आश्रम में विद्याभ्यास

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

Jangamawadi ...
Acc. No. ...246

करते थे उन्हें नैष्ठिक ब्रह्मचारी कहते थे। विद्याभ्यास करते समय भी गुरु शिष्य को प्रत्येक मास की पूर्णिमा, प्रतिपदा तथा अष्टमी को अवकाश दिया करता था। दुर्दिन में भी गुरु शिक्षा-कार्य बंद कर देता था। आश्रम में कोई अतिथि आता तो समस्त विद्यार्थियों को छुट्टी दे दी जाती थी। गुरुकुलों में कोई लम्बा वार्षिक अवकाश न रहता था। होने पर भी शिष्य अपनी जन्मभूमि को वापस नहीं लौटता था। सारी विद्या समाप्त कर (२५ वर्ष की आयु तक) गुरुगृह को छोड़ता था। उस समय ब्रह्मचारी की कोई परीक्षा न ली जाती थी। प्राचीन समय में परीक्षा का अस्तित्व न था। गुरु प्रतिदिन शिष्य के पढ़े हुए पाठ को सुनकर अगला पाठ पढ़ाता था। शिक्षा समाप्त करने पर गुरु शिष्य को अंतिम आशीर्वाद देता था जिसे समावर्तन संस्कार कहते थे। बहुत सी बातों के साथ गुरु कहता था कि—सत्यं वद, धर्मं चर, स्वाध्यायान्मा प्रमद, मातृदेवो भव, पितृदेवो भव, आचार्यदेवो भव, अतिथिदेवो भव। माता, पिता, आचार्य तथा अतिथि की सेवा तथा उनका आज्ञापालन करना, धर्म से विमुख न होना, सत्य को न छोड़ना। तैतरीय उपनिषद मे समावर्तन का पूरा वर्णन मिलता है। इसे समाप्त कर शिष्य शक्ति के अनुसार गुरुदक्षिणा दिया करता था। आचार्य को गुरुदक्षिणा देने की प्रथा अब तक चली आती है। जीवन की पहली सीढ़ी (ब्रह्मचर्य) को पार कर वह व्यक्ति विवाह करता, गृहस्थाश्रम में प्रवेश करता पर गुरु के आज्ञानुसार (स्वाध्यायान्मा प्रमद) स्वाध्याय कभी न छोड़ता था। इस प्रकार वैदिक काल से लेकर बौद्धयुग के पूर्व तक शिक्षा का क्रम चलता रहा।

बौद्ध धर्म के अभ्युदय से प्राचीन हिन्दू शिक्षापद्धति में परिवर्तन हो गया। उस काल में शिक्षा गुरुकुल अथवा गुरुगृह में न होती थी। विहारों में शिक्षा का प्रबंध होने लगा। संघ में प्रविष्ट होकर प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी भिक्षु शिक्षक के समीप विद्याभ्यास करता था। इन मठों में केवल भिक्षु ही पठन-पाठन न कर सकता था बल्कि बौद्ध धर्मावलम्बी सभी लोग शिक्षा ग्रहण कर सकते थे। साहित्य,

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri
3205

व्याकरण तथा कोष की शिक्षा दी जाती थी। जातकों में वर्णन मिलता है कि तक्षशिला, काशी, राजगृह, तथा मिथिला के विहारों में बालक शिक्षा प्राप्त करने जाया करते थे। वहाँ पर पढ़ने की तिथि निश्चित न थी। नए क्षात्रों को सर्वप्रथम पाली तथा संस्कृत पढ़ाया जाता था। तत्पश्चात् उन्हें विनय, पातिमोख तथा अन्य शास्त्रों की शिक्षा दी जाती थी। बौद्ध काल में भी उपाध्याय शिष्यों की सब आवश्यकताओं को पूरा करता था। उस समय की संस्थाओं में सब वर्णों को समान शिक्षा दी जाती थी। बौद्ध शिक्षक त्रिपटकों का अध्ययन करते थे। इसके अतिरिक्त जातकों में अठारह शिल्पों का उल्लेख मिलता है। इनमें मुख्यतः धनुषकला, मंत्रविद्या, सर्पविद्या और आयुर्वेद के नाम मिलते हैं। धार्मिक ग्रंथों के अतिरिक्त व्यवहार, गणित, कृषिकला, व्यापार, गान तथा चित्रकला की शिक्षा सर्वत्र दी जाती थी। बौद्ध विद्यार्थी इतने से ही संतुष्ट न होते थे वरन् धार्मिक वाद-विवाद तथा खण्डन के लिए हिन्दू शास्त्रों का भी अच्छा अभ्यास करते थे। जो विहार थे वे शिक्षा के केन्द्र बन गए।

बौद्ध धर्म का ह्रास होने पर ब्राह्मण शिक्षापद्धति का फिर से उद्धार हो गया। ईसा की सदियों में समाज को दो भाषाओं में शिक्षा दी जाती थी। शिक्षित समाज संस्कृत तथा साधारण जनता प्राकृत पढ़ती थी। वेदाध्ययन उसी प्रकार चलता रहा। वेद के साथ-साथ अन्य विद्याओं का अभ्यास प्रारम्भ हो गया। गुप्तकालीन लेखों में चौदह प्रकार के विद्यास्थान का उल्लेख मिलता है। वेद, वेदांग, पुराण, न्याय, मीमांसा तथा धर्मशास्त्र का पठन-पाठन होने लगा। उस समय प्रारम्भ में व्याकरण की शिक्षा दी जाती थी। ईसा की छठीं सदी में यात्रियों ने वर्णन किया है कि आयुर्वेद, ज्योतिष तथा तर्क-विद्या का अभ्यास कराया जाता था। उस समय के वैद्यक ग्रंथ में औषध तथा अस्त्र चिकित्सा का पूर्णतया वर्णन मिलता है।

पठन-पाठन का कार्य तो वैदिक काल से अखण्ड चला आ रहा था।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

परन्तु आधुनिक काल की तरह प्रारम्भिक शिक्षा का अभाव था। उस समय लिखने की कला का जन्म न हुआ था। विद्या कंठगता थी अतएव पढ़ना, लिखना तथा अरिथमेटिक की (प्रारम्भिक शिक्षा) शिक्षा न दी जाती थी। व्याकरण तथा उच्चारण का ज्ञान अत्यन्त आवश्यक समझा जाता था। ब्राह्मण काल से प्रारम्भिक बातों (लिखना, पढ़ना आदि) का जानना आवश्यक था। स्मृति में इन बातों का उल्लेख नहीं पाया जाता परन्तु ईसवी सन् से प्रारम्भिक शिक्षा का विकास पूर्ण रूप से हो गया। चीनी यात्रियों ने इसका वर्णन विस्तारपूर्वक किया है। यह कार्य गाँव के मंदिरों में पुजारी द्वारा किया जाता था। प्रत्येक ग्राम में पाठशालाएँ वर्तमान थीं। राजनीति तथा इतिहास के ग्रंथों में प्रारम्भिक पाठशालाओं का उल्लेख सर्वत्र पाया जाता है।

इसके अतिरिक्त जो पाठ्यक्रम था उसे उच्च शिक्षा के नाम से पुकारते थे। हिन्दू वैदिक युग में वेद तथा शास्त्रों का गम्भीर अध्ययन किया जाता था। परन्तु बुद्ध धर्म में प्रचारक की भावना को लेकर सब विषय की जानकारी ही हितकर समझी जाती थी। उच्च शिक्षा में कारीगरी तथा पेशा सम्बन्धी विषय भी सम्मिलित थे। कुछ विद्वान एक विषय—साहित्य, न्याय, व्याकरण अथवा ज्योतिष—को लेकर विशेष योग्यता प्राप्त करते थे। हिन्दू काल में पाठ्यक्रम में कला तथा विज्ञान का सुन्दर मेल था। पर पीछे इसको दो भागों में बाँट दिया गया। पहला धार्मिक तथा दूसरा सांसारिक। धार्मिक शिक्षा सिर्फ ब्राह्मण जाति के लिए निश्चित हो गयी और अन्य सांसारिक विषय दूसरी जातियाँ पढ़ने लगीं। इस प्रकार समाज में चारों वर्णों के लिए शिक्षा का समुचित प्रबंध था।

प्राचीन समय में स्त्री तथा पुरुष की शिक्षा का प्रबंध समान रूप से होता था। बालिकाएँ विद्याभ्यास के लिए ब्रह्मचर्य धारण करती थीं। वेद-मंत्रों की स्त्रियों ने रचना की थी। घोषा तथा लोपामुद्रा के नाम वैदिक साहित्य में मिलते हैं। रामायण में तारा और कौशल्या के यज्ञ-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सम्बन्धी कार्य का वर्णन मिलता है। प्राचीन समय में स्त्रियाँ पूर्ण शिक्षिता थीं। मनु ने भी स्त्रीशिक्षा का समर्थन किया है। उनके कथनानुसार स्त्रीशिक्षा की आवश्यकता थी। बौद्ध ग्रंथ ललितविस्तर में उल्लेख मिलता है कि सभ्य स्त्रियों में पढ़ने लिखने, कविता करने तथा शास्त्राध्ययन करने का प्रचार था। उच्च कुल की नारियाँ गान, नृत्य और चित्रकला में ज्ञान प्राप्त करती थीं। कालिदास ने लिखा है कि यक्ष की पत्नी पति के नाम पद्यमय गीतों की रचना करती थी। इस प्रकार स्त्रीशिक्षा का विकाश होने लगा।

राज्यशासन को सुन्दर ढंग से चलाने के लिए राजकुमारों को विशेष रूप से शिक्षा दी जाती थी। राजनैतिक ग्रंथों में राजकुमारों की शिक्षा का पर्याप्त वर्णन मिलता है। धर्मशास्त्र विषयक ग्रंथ में भी उनकी शिक्षा का पूर्ण ज्ञान हो जाता है। कौटिल्य ने लिखा है कि प्रारम्भिक शिक्षा समाप्त कर रूप, लेख, गणना तथा धनुष-विद्या राजकुमारों को सिखलायी जाती थी। रामायण में इसका उल्लेख मिलता है—"धनुर्वेदे च वेदे च वेदांगेषु च निष्ठितः (सुन्दर काण्ड)।" याज्ञवल्क्य स्मृति में राजकुमारों के लिए अन्वीक्षकी, दण्डनीति, वार्ता तथा त्रयी (तीन वेद) पाठ्यविषय समझे जाते थे। कुछ वार्ता और दण्ड नीति को ही आवश्यक विषय बतलाते हैं। पंचतंत्र में विष्णु शर्मा द्वारा राजपुत्रों की शिक्षा का वर्णन विदित है। ईसा के कई सदियों बाद के लेखों में राजाओं की बड़ी प्रशंसा मिलती है, जो कला व विद्याओं में निपुण होते थे। ये सब बातें राजकुमार के विशेष शिक्षा-क्रम की ओर संकेत करती हैं। प्राचीन समय में राजा विद्वान तथा पंडितों का आश्रयदाता हुआ करता था। भारत में इस प्रकार शिक्षा-प्रबंध होने पर भी किसी राजकीय शिक्षालय का वर्णन नहीं मिलता है। चूंकि शासक प्रजा के मानसिक विकाश पर भी ध्यान देता था अतएव राजा शिक्षालयों को सहायता दिया करते थे। शाँसक तत्कालीन शिक्षालयों को आर्थिक सहायता देकर चुप न बैठते थे पर आचार्य तथा शिक्षा के सुप्रबंध के लिए चिन्तन किया करते थे।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वे इसके प्रचार में परिश्रम करते तथा उत्साह दिलाते थे।

आजकल प्राचीन गुरुकुलों का नाम ही रह गया है। पर बौद्ध युग में जो मठ शिक्षालय का काम करते थे उनके भग्नावशेष मिले हैं। उनको देखने से पता चलता है कि कितना सुन्दर प्रबंध था। द्वारपंडित, आचार्य, विद्यार्थियों के रहने का पृथक पृथक कमरा था। पढ़ने व सोने के स्थान का प्रबंध था। जो विहार वर्तमान विश्वविद्यालय की तरह हजारों विद्यार्थियों को शिक्षा देते और उनके लिए छात्रावास रखते थे, तक्षशिला, मथुरा, सारनाथ, नालंद, विक्रमशिला, ताम्रलिप्ति में मौजूद थे। यहां से सहस्रों भिक्षु अथवा अन्य विद्यार्थी शिक्षा पाकर निकले और उन्होंने संसार में भारत का नाम प्रसिद्ध किया।

भारत की ललित कला

संसार में दो प्रकार की वस्तुएँ दिखलाई पड़ती हैं—एक प्राकृतिक और दूसरा कृत्रिम। प्रकृति परम पिता परमेश्वर की महिमा का गुण-गान करती है और संसार की अन्य वस्तुएँ मनुष्य के युग-युग-व्यापी सृजन शक्ति के कौशल का परिचय देती हैं। यह कहना कठिन है कि विश्व में ललित कलाओं का आरम्भ कब हुआ। मनुष्य के आविर्भाव के साथ साथ सौंदर्य दर्शन की भावना उसमें विद्यमान थी। इसी को मनुष्य ने विभिन्न तरीके पर अभिव्यक्त किया। अतएव अस्पष्ट आन्तरिक भावना की अभिव्यक्ति को कला द्वारा प्रदर्शित किया गया। विद्वानों का मत है कि अन्ध विश्वास तथा खानाबदोश जीवन के कारण सर्व-प्रथम पशुओं का समावेश कला में किया गया। कालान्तर में ज्यों ज्यों सभ्यता फैलती गयी, कला का विकास होता गया। कला दो प्रकार की मानी गयी है। (१) स्थित तथा (२) गतिशील। स्थित कला के अन्तर्गत वास्तु, तक्षण तथा चित्र कलाएँ हैं और गतिशील कला में गति व भावव्यंजना का द्योतक संगीत आदि सम्मिलित हैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

धर्मप्रधान देश होने के कारण भारत में प्रत्येक वस्तु का प्रारम्भ धर्म से सम्बन्धित है। भारतीय कला धर्म- धान है और इसका जन्म धर्म ही के कारण हुआ। इतिहास के जाननेवालों से यह बात छिपी नहीं है कि आज से हज़ारों वर्ष पूर्व प्रस्तर युग की सामग्रियाँ यह बतलाती हैं कि उस समय के लोग भी कला से सर्वथा अनभिज्ञ न थे। प्रस्तर के पालिशदार औज़ार मिर्जापुर, रीवाँ, छोटानागपुर आदि स्थानों में मिले हैं जो मनुष्यों की कारीगरी को बतलाते हैं। दक्षिण में बिलारी जिले में मिट्टी के बरतन मिले हैं। प्रस्तर की शिलाओं पर नक्काशी का काम और चित्र मिर्जापुर, होशङ्गाबाद और कैमूर की पहाड़ियों में पाए जाते हैं। मोहंजोदारो और हरप्पा की सभ्यता का पता सिन्धु तट की खुदाई से ज्ञात हुआ है। मोहंजोदारो में पुरानी इमारतों की सात तहें मिली हैं। आज से पाँच हज़ार वर्ष पहले की पक्की ईंटों का महल भारतीयों की कारीगरी बतलाता है। सिन्धु तटवालों में धर्म के भाव भी थे। वे लोग धरती को माता अथवा देवी मान कर नग्न रूप में उसकी मूर्त्ति बना कर पजा करते थे। मुद्रा पर खुदी पशुओं से सेवित योगासनस्थ शिव की मर्त्ति कला का द्योतक है। स्वाभाविक आकार के पशु-पक्षियों की भी मुद्राएँ पाई जाती हैं। मोहंजो-दाड़ो में एक मानव की मूर्त्ति भी मिली है। अतएव वैदिक काल से पहले ही मूर्त्तिपूजा प्रचलित थी।

वैदिक काल से बौद्धयुग तक भारतीय कला का कोई नमूना उपलब्ध नहीं है। वैदिक काल में मूर्त्ति की कल्पना अवश्य थी। ऋग्वेद में वज्र-धारी इन्द्र का वर्णन सुन्दर रीति से किया गया है। विद्वानों का कहना है कि ऐसा वर्णन किसी धातु प्रतिमा के विषय में सम्भव है। वैदिक साहित्य में प्रतिमा शब्द का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। 'देव' मूर्त्ति तथा प्रतिमा का प्रयोग सूत्र ग्रंथों में भी मिलता है। रामायण में भी राजा दशरथ की प्रतिमा का वर्णन मिलता है। पाणिनि ने अपने ग्रंथों में प्रतिमा का उल्लेख किया है। बौद्ध युग के आरम्भ में विरक्तप्रधान धर्म

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

के अन्दर साकार भगवान का समावेश न हो पाया । हीनयान सम्प्रदाय में मूर्त्तियों का अभाव रहा । बौद्ध धर्मानुयायी धार्मिक प्रतीक बोधिवृक्ष, स्तूप, उष्णीष व धर्मचक्र का पूजन करते थे । महायान सम्प्रदाय म भक्तिमार्ग का प्रचार हुआ । साधारण जनता निराकार परमेश्वर का सहज में ध्यान नहीं कर सकती थी, अतएव साकार मूर्त्तियाँ उत्तर-बौद्ध-युग में बनने लगीं । चैत्य और विहार भी निर्मित होने लगे । धार्मिक भावना के परिवर्तन के साथ साथ कला की उत्पत्ति और उसका विकाश हुआ । भारतीय ललित कला का बीज धर्म में ही निहित है ।

कला में भारतीय उन्नति का अध्ययन चार विभिन्न भागों से किया जा सकता है । यानी इसकी चार शाखाओं पर विचार करना आवश्यक है ।

(१) वास्तुकला—भवन-निर्माण या उससे सम्बन्ध रखनेवाली चीजों की बनावट को वास्तुकला कहते हैं ।

(२) तक्षणकला—मूर्त्ति बनाने की कला चाहे वह स्तम्भ, मंदिर, गुफा या स्वतंत्र रूप से बनायी जाय ।

(३) चित्रकला—दीवारों पर तथा वस्त्रों पर रंगों के द्वारा चित्र तैयार करना ।

(४) संगीत तथा अभिनय-गाने, बजाने तथा नाटक आदि की वार्ता ।

(१) वास्तुकला

वैदिककालीन सभ्यता की शिल्प-कला का कोई नमूना नहीं मिलता है । सिन्ध की घाटी में मोहंजोदारो के स्थान पर खुदाई हुई है । इसमें वास्तुकला के प्रमाण मिले हैं । यहां उस समय के मकान का सुन्दर नमूना देखा जा सकता है । आज से पाँच हज़ार वर्ष पूर्व भारत के निवासी मकानों में स्नानगृह, अतिथिगृह, भोजन का स्थान और रहने के लिए पृथक पृथक जगह तैयार कराते थे । मकानों में पानी निकलने की नालियाँ अलग से दिखलाई पड़ती हैं । उनके मकान सब चीजों से भरपूर रहते थे । रामायण तथा महाभारत आदि ग्रंथों में अपने देश का

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सुन्दर वर्णन मिलता है। अयोध्या के महलों का वर्णन मनुष्य को चकित कर देता है। लंका के रावण के गृहों का हाल असत्य मालूम पड़ता है। महाभारत में राजसूय यज्ञ का वर्णन, यज्ञशाला तथा द्वारिका व इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली) के महलों का वृत्तांत मनुष्य को आश्चर्य में डाल देता है। पढ़नेवाले इसे काल्पनिक मानने लगते हैं। अति प्राचीन समय की शिल्पकला का प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं मिलता। परन्तु यह तो निर्विवाद है कि शिल्प विद्या चरम सीमा तक पहुँच गयी थी। उन ऐतिहासिक ग्रंथों के वर्णन को कोरी कल्पना मानना उपयुक्त व न्यायसंगत नहीं है।

वास्तुकला के सबसे पुराने नमूने मोहंजोदारो के बाद मौर्य काल के मिले हैं। मौर्यकालीन महलों तथा किलों का वर्णन मेगस्थनीज के द्वारा किया गया है। उससे मालूम पड़ता है कि सम्राट् ने बहुत ही सुन्दर और मजबूत किले तैयार कराए। पाटलिपुत्र के वर्णन से मालूम पड़ता है कि नगर के चारों ओर लकड़ी की दीवार थी। भूमि के अन्दर पड़े हुए नष्ट हुए भग्नावशेष देखने में आते हैं। यूनानी लेखक द्वारा चन्द्रगुप्त के महलों का भी वर्णन मिलता है। अशोक ने वास्तुकला में प्रस्तर तथा ईंट का भी प्रयोग किया। इसने स्तम्भों का निर्माण एक विशेष आयोजन के साथ किया था। प्रस्तर के विशाल खम्भों पर इतनी चिकनी पालिश मौजूद है जो उस समय की उन्नत शिल्प कला का परिचय देती है। अशोक की इमारतों में स्तूपों की अधिक संख्या पायी जाती है। उनमें सारनाथ के धर्मराजिका स्तूप का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। वे प्राचीन रूप में वर्तमान नहीं मिलते। उस समय पहाड़ों पर गुफाएँ बनाने का रिवाज प्रचलित था। लोमश ऋषि की गुफा अत्यन्त प्राचीन मानी जाती है। अशोक ने गुफा बना कर आजीवकों को दान कर दिया। पहाड़ काट कर एक विस्तृत कमरा बनाया जाता था। दीवार, छत और फर्श बिल्कुल चिकने तथा साफ़ होते थे। पत्थरों को तराशना और ऊँचे स्तूप व स्तम्भ खड़ा करना भारतीय कला की उन्नत अवस्था को बतलाता है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

शुंग तथा आंध्र शासनकाल में भी गुफाएँ तैयार की गयीं। उनमें सांची का नाम संसारप्रसिद्ध है। ईसा के पूर्व दूसरी और पहली शताब्दी के नमूने सांची के अतिरिक्त बरहुत में भी मिलते हैं। इन स्थानों पर अत्यन्त सुन्दर तोरण (द्वार), प्रस्तर की दीवार तथा वेष्टनी (स्तूप का गोल घेरा) बनायी गयी हैं। उन पर बोधिवृक्ष, धर्मचक्र और भगवान बुद्ध की जीवनकथाएं खचित हैं। जातक कथाओं का प्रदर्शन (प्रस्तर पर खुदाई) सांची से सुन्दर और कहीं नहीं मिलता। इसी सिलसिले में अमरावती के स्तूप का भी नाम लिया जा सकता है। ईसवी सन् के बाद अजन्ता तथा एलेफेन्टा की गुफाएँ तैयार की गयीं। पहले में चित्र बनाए गए और दूसरे में विशाल मूर्त्तियाँ पर्वत की शिला को काट कर तैयार की गयीं। गुप्त राजाओं के शासनकाल में प्रत्येक शिल्प-शाखा के साथ वास्तुकला की भी उन्नति हुई। खुदाई में निकले हुए नमूनों के आधार पर उनका वर्णन सुन्दर रूप से किया जा सकता है। तत्कालीन पुस्तक मानसार में राजमहलों का वर्णन मिलता है। ये कई मंजिल के होते थे। वत्स ट्टि ने मन्दसोर के लेख में लिखा है कि दशपुर के महल कैलाश पर्वत के समान ऊँचे थे। कालिदास ने भी मेघदूत में उज्जयिनी के भव्य राज-प्रासादों का सुंदर चित्र खींचा है। परन्तु इनमें से कोई वर्तमान नहीं है। गुप्त सम्राटों ने कई प्रकार के स्तम्भ बनवाए। कीर्ति स्तम्भ, ध्वज स्तम्भ तथा सीमा स्तम्भ आदि भागों में ये विभाजित किए जा सकते हैं। अशोक के स्तम्भों से ये स्तम्भ कुछ विलक्षण हैं। इनमें चिकनापन नहीं है तथा ये कई कोने के हैं। उस समय स्तूप तथा विहार भी बनाए गए। सारनाथ का धर्मक-स्तूप देखने योग्य है। विहार में भिक्षु रहते थे तथा पठन-पाठन किया करते थे। ये भी कई मंजिल के बनते थे। नालंदा में उनके भग्नावशेष हैं। सारनाथ में अनेक वर्तमान हैं। ग्वालियर के पास भिलसा के समीप उदयगिरि नामक गुफा भी खुदवाई गयी थी। गुप्तकालीन वास्तुकला में देवताओं के मंदिरों का भी विशेष स्थान है। ऊँचे चबूतरों

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पर (सीढ़ियों के साथ) मंदिर बनवाए जाते । शिखरयुक्त मंदिर की प्रथा उस समय से चली । भूमरा (नागोद राज्य), देवगढ़ (झांसी) में भिटरगाँव के प्रसिद्ध मंदिर थे । ईसा की छठीं शताब्दी के बाद विभिन्न राजाओं ने जहाँ तहाँ मंदिर बनवाए। पालवंशीय राजाओं ने विक्रमशिला विश्वविद्यालय का भवन बनवाया । उड़ीसा के शासकों न भुवनेश्वर का विशाल मंदिर निर्मित कराया । दक्षिण भारत में द्राविड़ शैली के मंदिर तैयार होने लगे । उनमें देवता के विशिष्ट मंदिर के अतिरिक्त गोपुरम् (मुख्य द्वार) की प्रधानता पायी जाती है । मंदिर के गर्भगृह (देवता का स्थान) में पुजारी प्रवेश करता है । दूसरे, बाहरी, मण्डप में प्रदक्षिणा मार्ग रहता है। गोपुरम् विशाल भीमकाय आकार का बनता है और प्रधान शिल्पियों की कृतियाँ उनसे प्रकट होती हैं । दक्षिण भारत में मदुरा में मीनाक्षी देवी का मंदिर सर्वोत्कृष्ट समझा जाता है । आबू पर्वत का तेजपाल मंदिर तथा खजुराटों का महादेव मंदिर मध्ययुग के सुन्दर नमूने वर्तमान हैं। इस प्रकार वास्तुकला से भी शिल्प कलाकारों के नमूने प्राचीन आर्य सभ्यता की महत्ता को बतलाते हैं ।

मूर्ति-कला

भारत के साहित्यिक प्रमाणों से यह सिद्ध हो चुका है कि भारत में कला का प्रचार अत्यन्त प्राचीन काल से था । उस समय धार्मिक विषयों को लेकर मनुष्य का रूप दिया जाने लगा । यक्ष, नाग और देवताओं की मूर्तियाँ बनने लगीं । अशोक (मौर्य काल) के समय से इस प्रकार का काम भारतीय कला में अधिक मात्रा में पाया जाता है । परन्तु इससे पूर्व शिशुनागवंशी राजाओं की साधारण बिना पालिश की हुई मूर्तियाँ मिली हैं । अशोक के समय से बौद्धधर्म सम्बन्धी यक्ष, यक्षी तथा स्तम्भों पर पशुओं की मूर्तियाँ बनने लगीं । सारनाथ आदि स्थानों पर स्तम्भों पर अत्यन्त सुन्दर पालिश की हुई पशु-मूर्तियाँ पायी जाती हैं । ये उस समय की कला के सर्वोत्कृष्ट नमूने हैं । संसार में ऐसी सुन्दर मूर्त्तियाँ

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

किसी देश के शिल्पकार ने तैयार नहीं कीं। सिंह, हिरन, बैल आदि जानवर अपने प्राकृतिक वेश में दिखलाई पड़ते हैं। उनका जितना वर्णन किया जाय वह थोड़ा है। ईसा पूर्व चौथी शताब्दी से बुद्धधर्म राजकीय धर्म हो गया। अतएव सर्वत्र बौद्धधर्मसम्बन्धी प्रतीक बोधिवृक्ष, धर्म-चक्र, स्तूप आदि तत्कालीन कला में पाये जाते हैं। बरहुत तथा सांची में उनके उदाहरण पाए जाते हैं। प्रतीक के अतिरिक्त भगवान बुद्ध की जीवन-सम्बन्धी जातक कथाएँ प्रस्तर पर खुदी मिलती हैं। उन स्थानों पर बौद्ध-स्तूपों पर तथा उसके वेष्टनी (रेलिंग) पर अत्यन्त सुन्दर तरीके पर यक्ष परिचारिका, प्रतीक तथा जातक कथाएं खुदी हैं। उनको देख कर देखने-वाले आश्चर्यचकित हो जाते हैं। ग्रंथों में जिन खेलों व उत्सवों का वर्णन मिलता है उनकी एक झलक साँची व बरहुत में पायी जाती है। भारतीय काव्यों में जिन आभूषणों तथा अलंकारों का वर्णन किया गया है उनका जीता जागता उदाहरण इन स्थानों पर खुदी मूर्त्तियों में मिलता है। सृष्टि उत्पादक वस्तुओं—कलश, मकर, घट—का समावेश तत्का-लीन कला में पाया जाता है। कमल, लता और पक्षियों की भी आकृतियाँ खचित हैं। दक्षिण भारत में भी अमरावती में ऐसी ही कला का उदाहरण पाया जाता है। स्तूप के ऊपर तथा वेष्टनी के प्रत्येक प्रस्तर पर विभिन्न पशु, जातक कथाएं तथा बुद्ध भगवान की योगावस्था में मूर्ति खुदी हैं। आन्ध्रयुग की ललित कला का ज्ञान उसीसे होता है। इसमें पुष्पयुक्त लताएँ खोदी गयी हैं जो सुन्दरता को कई गुना बढ़ा देती हैं। इसकी विशेषता यह है कि बेलबूटे, लताएँ तथा पशुओं का सौन्दर्य अत्यन्त अधिक मात्रा में पाया जाता है। बुद्ध की मूर्त्तियों पर मोटे वस्त्र का पहनावा दिखलाया गया है जिससे ऊपर के अंग दिखलाई न पड़ें। ईसा की पहली सदी से कुषाण राजाओं के शासन-काल में एक नए स्कूल की उत्पत्ति हुई। इसे गान्धार कला कहते हैं। इसका कार्य पुरुषपुर (पेशावर) के समीप होता रहा। स्वात की घाटी (प्राचीन गांधार प्रदेश) के कारण यह गांधार कला के नाम से

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्रसिद्ध हुई। यहाँ के कारीगर भूरे रंग का प्रस्तर प्रयोग करते थे। विद्वानों का मत है कि इस कला पर यूनानी लोगों का प्रभाव पड़ा परन्तु भाव-प्रदर्शन तथा रचना का प्रकार सर्वथा भारतीय हैं। इसी समय महायान पंथ के जन्म होने से बुद्ध धर्म में भक्ति का प्रवेश हो गया। भागवान बुद्ध को योगीश्वर के रूप में दिखलाया गया। जटाधारी बुद्ध की प्रतिमा बनने लगी। विशेष कारणों से मुखमण्डल के चारों ओर प्रभामण्डल को प्रस्तर में दिखलाया गया। सबसे प्रथम भारतीय कला में तपस्वी गौतम की मूर्त्ति यहीं तैयार की गयी। उसमें केवल अस्थि-चर्म दिखलाया गया है। जातक कथाओं की तो कोई बात ही नहीं। गान्धार कला के पश्चात् गुप्त-युग में तीन स्थानों पर मूर्त्तियाँ सुन्दर रूप से बनने लगीं। पहला मथुरा, दूसरा सारनाथ तथा तीसरा स्थान पाटलिपुत्र था। सारनाथ का केन्द्र अशोक के समय से ही प्रसिद्ध था। वहाँ पर उसने धर्मराजिका स्तूप तथा स्तम्भ बनवाया था। मथुरा का अभ्युदय कुषाण राज्य में हुआ। पाटलिपुत्र गुप्त समय में विख्यात हो गया। मथुरा में लाल पत्थर का प्रयोग किया जाता था। सारनाथ में चुनार के बालूदार प्रस्तर प्रयुक्त होते थे। पाटलिपुत्र में धातु-मूर्त्तियों की प्रधानता थी। उस समय की मूर्त्तियाँ संग्रहालयों में सुरक्षित हैं। भगवान बुद्ध के प्रत्येक प्रकार की मूर्ति, बोधिसत्व, जातक तथा हिन्दू देवी-देवताओं की भी मूर्त्तियाँ अनगनित तैयार होने लगीं। मूर्त्तियों में वस्त्र का आवरण इतना पतला दिखलाया जाता था कि उनके अंग साफ़ तौर से दिखलाई पड़ते थे। पाटलिपुत्र के समीप नालंदा में भी अच्छे प्रकार की ताम्र मूर्त्तियाँ तैयार की जाती थीं। कला की इतनी उन्नति हुई कि गुप्त काल 'स्वर्ण युग' के नाम से इतिहास में प्रसिद्ध हो गया। इस समय की कला रूपप्रधान तथा भावप्रधान थी। शिल्पकार मूर्त्तियों को अत्यन्त सुन्दर तैयार करते थे परन्तु उसके आध्यात्मिक भावों को दिखलाने में कम सिद्धहस्त न थे। हृदय के भाव प्रस्तर की मूर्त्तियों द्वारा प्रकट हो जाते थे। पत्थर की मूर्त्तियों के समान मिट्टी की भी मूर्त्तियाँ बनने लगीं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पहले की अपेक्षा ये मृण्मयी मूर्त्तियाँ सुन्दर हैं और शिल्पकारों की निपुणता बतलाती हैं। प्रत्येक प्रकार की आकृति मिट्टी से तैयार की जाने लगी। देवताओं, मनुष्यों तथा पशुओं की मूर्त्तियाँ मिलती हैं। यही कारण है कि संसार के लोगों ने गुप्तयुग की कला की प्रशंसा की है। यह कहना अप्रासंगिक न होगा कि राजाओं के सिक्कों पर जो आकृतियाँ बनने लगीं वह किसी प्रकार घट कर न थीं। वस्त्राभूषण से सुसज्जित राजा की छोटी प्रतिमा सिक्कों पर मिलती है। ये सब भारतीय कला की विशेषता को बतलाते हैं। ईसवी सन् छठीं सदी (हर्ष के बाद) के पश्चात् भारतीय तक्षण कला की अवनति प्रारम्भ हो गई। साम्राज्य नष्ट हो गए। छोटे छोटे शासक राज्य की लिप्सा में युद्ध करते रहे। किसीका ध्यान ललित कला की ओर न था। केवल बंगाल के पास बंगीय नरेशों ने इसे प्रोत्साहन दिया। पाल के समय की मूर्त्तियाँ काले चिकने पत्थर की बनने लगीं। उनकी अपनी विशेषता थी। नेपाल में मूर्त्तिकला का आरम्भ पाल मूर्त्तियों के अनुकरण से हुआ। उत्तर भारत में मुसलमानों के आक्रमण के कारण आठवीं सदी के बाद महापुरुषों का जन्म दक्षिण भारत में होने लगा। वही भारतीय संस्कृति का केन्द्र बन गया। प्रसिद्ध राजा व महात्मा वहीं पैदा हुए। शंकर तथा रामानुज ने शैव तथा वैष्णव मतों को पुष्ट किया। अतएव ग्यारहवीं सदी में चोल नरेशों के राज्य में कला का नमूना देखने को मिलता है। शिव और विष्णु की अत्यन्त सुन्दर मूर्त्तियाँ बनने लगीं। इस कला ने भारत के बाहर भी अपना प्रभाव जमाया। और जावा, सुमात्रा, बाली आदि द्वीपों में हिन्दू मूर्त्तियाँ तैयार की जाने लगीं। भारतीय कला में बौद्ध मूर्त्ति प्रज्ञापारमिता की नकल पर शक्ति का समावेश किया गया। दर्शन शास्त्र में पुरुष प्रकृति (ईश्वर व शक्ति) या मनुष्य व स्त्री का भेद तो वर्तमान था परन्तु ईसवी सदी के बाद इस भाव को कला में दिखलाया गया। दोनों में परस्पर मेल है। एक के साथ साथ दूसरा सदा सम्बन्धित है। ईश्वर से अलग शक्ति तथा शक्ति के बिना ईश्वर

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कुछ काम नहीं कर सकता। इसी भाव को कलाकारों ने प्रस्तरों में दिखलाया। पालवंश के समय में उमामहेश्वर की मूर्तियाँ बनने लगीं। लक्ष्मीनारायण अर्द्धनारीश्वर उसीका नमूना है। नेपाल में तारा की मूर्ति उस भाव को बतलाती है। कहने का तात्पर्य यह है कि भारतीय कलाकार पुण्यलाभ व धार्मिक सद्भावना को सामने रख कर मूर्त्ति तैयार करते रहे, केवल सौंदर्य उनका ध्येय न था।

चित्रकला

भारतवर्ष में मूर्ति के साथ साथ चित्रकला का भी वर्णन पाया जाता है। परन्तु सब से प्राचीन चित्र भाजा, मिर्जापुर तथा राजगढ़ की गुफाओं में मिलते हैं। चित्रकार गुफा की भीतरी दीवार पर दो प्रकार से चित्र तैयार करते थे। पहले प्रकार का कार्य अनुकरण था। किसी चित्र को सामने रख कर उसका दूसरा चित्र (नकल) बनाते अथवा उसके भाव को समझ कर कल्पना से उसकोचित्रित करते थे। उस समय के चित्रों का उद्देश था कि दोषों को छिपा कर गुणों का उत्पादन करना। रमणीय रूप देकर आनन्द प्रदान करना मुख्य ध्येय समझा जाता था। कभी कभी प्रिय का चित्र तथा शिक्षाप्रद बातें भी चित्र में दिखलायी जाती थीं। विष्णु-धर्मोत्तर आदि पुराण तथा साहित्य के ग्रंथों में ऐसी सिद्धान्त की बातें भरी पड़ी हैं। चित्रकार उपकरण, रंग, रीति आदि से पूर्णतया परिचित रहता था। वात्स्यायन ने तो चित्रकला को नागरिक के ज्ञान का आवश्यक विषय वतलाया है। कालिदास ने शकुन्तला में चित्रकला को विनोद की वस्तु माना है। अन्य ग्रंथों में राजकीय चित्रशाला, सार्वजनिक कलागृह तथा व्यक्तिगत चित्रगृह का वर्णन मिलता है। इससे प्रकट होता है कि इस विषय का प्रचार सर्वत्र था। प्राचीन समय में भित्ति चित्र (फ्रेस्को पेन्टिङ्ग) का अधिक प्रचार था जिसके उदाहरण अजन्ता तथा बाघ की चित्रकारी में पाये जाते हैं। चित्र खींचने का एक विशेष प्रकार था। मिट्टी, भूसे, जल, गोबर आदि को मिला कर एक लेप

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तैयार किया जाता था। चित्रभूमि पर इस लेप को लगा कर सूख जाने के बाद चित्रण का कार्य प्रारम्भ किया जाता था। भरत ने नाट्य-शास्त्र में इस प्रकार के लेप का वर्णन किया है। फलक या केनवास पर भी चित्र खींचे जाते थे। किसी किसी प्राचीन ताड़ पत्र की हस्तलिखित पुस्तकों में भी चित्र पाए जाते हैं। सभी आधार पर चित्र एक ही प्रकार से खींचा जाता। रेखा खींच कर रङ्ग भरा जाता। प्रधानतया लाल, पीला, नीला तथा श्वेत—चार रङ्गों का चित्र-निर्माण में व्यवहार करते थे। संस्कृत के शिल्प-ग्रंथों में खींची जानेवाली वस्तु की अवस्था (पोज) का भी वर्णन पाया जाता है। भारत में अत्यन्त पुरानी गुफाओं में चित्र मिले हैं परन्तु ईसा की चौथी सदी से, गुप्त राजाओं के समय से, इसकी विशेष उन्नति हुई। कालिदास के ग्रंथों में सभी बातों का वर्णन विशद रूप से पाया जाता है। अजन्ता की चित्रकारी संसारप्रसिद्ध है। पहाड़ी चट्टानों को काट कर अजन्ता की गुफाएँ बनाई गयीं। इनकी दीवारों पर एक प्रकार का प्लास्टर लगा कर और सफेदी कर के सुन्दर चित्र बनाए गए हैं। यहाँ की गुफाओं में चित्र समय समय पर बनते रहे। भगवान बुद्ध की कथाओं का चित्रण ही अजन्ता गुफाओं में किया गया है। इसके अतिरिक्त राजसभा व जुलूस आदि का चित्रण भी सुन्दर ढंग से पाया जाता है। इनके देखने से उस समय की वेशभषा, रहन-सहन का पता लगता है। चित्रों में जीवन के प्रति आनन्द की भावना है। बुद्ध को भिक्षा देनेवाले माता-पुत्र का चित्र अजन्ता में सर्वोत्कृष्ट माना जाता है। संसार में इसके समान सुन्दर भावमय चित्रकारी अन्यत्र नहीं पायी जाती। राजकीय जुलूस का भी नाम उल्लेखनीय है। भारत में अजन्ता की सर्वश्रेष्ठ कला को देखने संसार से यात्री आते हैं। सभी इसके चित्र-कारों की सौन्दर्य-भावना की भूरि भूरि प्रशंसा करते हैं। कुरूपता का नाम नहीं। औचित्य का ध्यान सर्वत्र रक्खा गया है। छठीं सदी के चित्रकारी का उदाहरण मध्य भारत में बाघ की गुफाओं में मिलता है। अजन्ता के लेप से यहाँ की भूमि में अन्तर है। 'रंग-महल' नाम की गुफा अद्भुत

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

चित्रकारी का गृह है। स्त्री गायिकाओं का दृश्य भी अत्यन्त मनमोहक है। इसमें वाद्य और संगीत का प्राचीन ढंग पाया जाता है। अजन्ता से बाघ की चित्रकला कुछ ही कम है। भावप्रधान चित्र स्वर्गीय आनन्द देनेवाले हैं। यहां पर मानव जीवन से सम्बन्ध रखनेवाले चित्र पाए जाते हैं। धार्मिकता गौ रूप में है। हैवेल आदि विद्वानों ने इनकी अत्यन्त मार्मिक प्रशंसा की है। गुफाओं के अतिरिक्त कनवास पर भी चित्र बनने लगे। नैपाल तथा तिब्बत से प्राप्त भारतीय चित्र इसी प्रकार के हैं। प्राचीन शैली के बाद मध्य युग में राजपुताने में हिन्दुओं ने एक नयी शैली निकाली जिसे राजपूत शैली कहते थे। परन्तु ये चित्र उनसे घट कर और सांसारिक विषयों के बतलानेवाले हैं।

संगीत

ललित कला का एक मुख्य अंग संगीत भी है। संगीत वह माया है जिसमें पड़ कर मनुष्य क्या पशु भी प्राण दे देते हैं। भर्तृहरि ने साफ तौर से कहा है कि—साहित्यसंगीतकलाविहीनः, साक्षात् पशुः पुच्छ-विषाणहीनः—संगीत बिना मनुष्य पशु के समान है। कला का प्रधान अंग होने के कारण संगीत को बहुत महत्त्व दिया जाता था। यह आनन्द-दायक तथा आध्यात्मिक विकास में सहायक था। अतएव गीता में कृष्ण भगवान ने बतलाया है कि 'मैं सामवेद हूँ।' दार्शनिक लोगों का विचार है कि ओऽम् (प्रणव) से विभिन्न राग निकले। संगीत के सात स्वर भी प्रणव से ही निकले। भारतवर्ष में इसका प्रचार अत्यन्त प्राचीन समय से आ रहा है। महर्षि वाल्मीकि ने लव-कुश को जंगल में संगीत की शिक्षा दी। नारदजी संगीत के आचार्य थे। संगीत के तीन भिन्न अंगों—गान, वाद्य तथा नृत्य—का वर्णन भारतीय शिल्प ग्रंथों या संगीत साहित्य में पाया जाता है। भरत के नाट्यशास्त्र में सब अंगों का वर्णन है। संगीतरत्नाकर भी इसी विषय का एक प्रधान ग्रंथ है। शास्त्र में दो प्रकार से संगीत की अभिव्यक्ति की जाती है। पहला, देशी ढंग जो

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सर्वसाधारण के प्रयोग में आता है। दूसरे, मार्गी तरीका का केन्द्र दक्षिण भारत था जिसमें द्राविड़ी, आन्ध्री तथा करनाटकी राग प्रयुक्त किया जाता है। इसी विद्या को ऋषियों ने गन्धर्व तथा अप्सराओं को सिखलाया। प्राचीन समय में संगीत सर्वसाधारण की विद्या थी। नाट्यशास्त्र के वात्स्यायन ने भी संगीत शास्त्र पर प्रकाश डाला है। नागरिक इसका ज्ञान रखते थे। राज-दरबार में गानेवालों का समुचित आदर किया जाता था। बालक, बालिकाएँ तथा स्त्रियाँ संगीत की शिक्षा ग्रहण करती थीं। कालिदास के ग्रंथ तथा मृच्छ-कटिक में इस कला का वर्णन सर्वत्र पाया जाता है। ईसा की छठीं सदी तक (गुप्त युग में) संगीत की अच्छी उन्नति हुई। साहित्यिक वर्णन के अतिरिक्त चित्र तथा मूर्त्तिकला में इसे स्थान मिल गया था। बाघ की गुफा में नृत्य करनेवाली दो मण्डलियों का चित्र पाया जाता है। मृदङ्ग, झाल व वीणा आदि का चित्र खींचा गया है। सिक्के पर गुप्त राजा समुद्रगुप्त वीणा बजाता खुदा हुआ है। भूमरा मंदिर में शिव के गण भेरी, झाल आदि बजाते दिखलाए गए है। इस प्रकार यह विदित होता है कि साधारण व्यक्ति से लेकर राजसभा तक संगीत का आदर था और लोग जानते थे। नवीं सदी में रचित नारद का 'संगीत मकरन्द' कला का एक प्रसिद्ध ग्रंथ है। तामिल वेद मार्गी ढंग का अनूठा ग्रंथ है। मध्ययुग में विजयनगर में दस टाट की उत्पत्ति हुई। वैष्णव तथा शैव धर्म की वृद्धि से मंदिर गाने तथा नृत्य का घर हो गया। दक्षिण के नाथ मुनि ने इसका खूब प्रचार किया। श्रीयामुनाचार्य का भी नाम लेने योग्य है। तीर्थों में प्रचार बढ़ने लगा। साधुओं ने इसके प्रचार में हाथ बँटाया। मठ की भी बारी आयी। गाने बजाने की जगहें स्थापित हो गयीं। उत्सव पर नृत्य भी होने लगे। धीरे धीरे राज-दरबार संगीत का केन्द्र हो गया। इसी तरह से भारत में इसका प्रचार बढ़ने लगा। हरिकीर्तन के साथ नृत्य पर भी जोर पड़ा। शिव के ताण्डव नृत्य तथा महाविष्णु के नृत्य

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

को आदर्श मान कर सबने नृत्य को अपनाया। ऋग्वेद में नृत्य का उल्लेख पाया जाता है। रामायण महाभारत में भी इसके उदाहरण पाए जाते हैं। अतः प्राचीन काल में नृत्य के प्रचार का अनुमान उपर्युक्त साहित्य उल्लेखों से ही किया जाता है। संगीत के साथ नाटक (अभिनय) का भी प्रचार होता रहा, क्योंकि नाटक में उसी बात को ठीक प्रकार से रखना ही पर्याप्त न था परन्तु गान, वाद्य तथा नृत्य भी सम्बन्धित थे। भारतीय नाटक सर्वांगसुन्दर होते थे। नाटक किसी विशेष घटना या उत्सव पर दिखलाए जाते। यही कारण है कि ललित कला में संगीत के साथ अभिनय का भी नाम लिया जाता है।

संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि भारतवर्ष में सभ्यता की उन्नति के साथ ललित कला का भी अभ्युदय पाया जाता है। वास्तु, तक्षण, चित्र तथा संगीत ने संसार के सम्मुख भारत के मस्तक को ऊँचा किया।

भारतीय उपनिवेश तथा संस्कृति

प्राचीन भारत के अधिवासी बड़े ही उत्साही तथा परिश्रमी थे। कला कौशल, सांसारिक सुख तथा आध्यात्मिक अभ्युदय के ऊँचे शिखर पर पहुँच कर भी संतुष्ट नहीं हुए, परन्तु उन लोगों ने भारत के समीप में और एशिया के दूर प्रांतों में जाकर उपनिवेश बनाया और सभ्यता फैलाई। वहाँ पर आर्य धर्म और उन्नत साहित्य का प्रचार किया। उन देशों के प्राचीन इतिहास तथा प्राप्त लेखों के अध्ययन से उपर्युक्त कथन की पुष्टि होती है। उनके रीति-रिवाज बतलाते हैं कि उस देश पर भारतीय संस्कृति का गहरा छाप पड़ा था। भारतीय सभ्यता के चिह्न मध्य-एशिया, तुर्किस्तान, और एशिया के दक्षिणी द्वीप समूह—मलाया, सुमात्रा, जावा, बाली, चम्पा, कम्बोडिया तथा थाईलैंड (स्याम) में अधिकता से मिलते हैं।

भारत के प्राचीन साहित्य के अध्ययन से प्रकट होता है कि ईसा पूर्व

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सदियों से ही भारतीयों को समीप के द्वीपों का ज्ञान था। रामायण तथा पुराण में यवद्वीप तथा सुवर्ण द्वीप का उल्लेख मिलता है। इनकी समता वर्तमान जावा सुमात्रा से की जाती है। रामायण में जावा के सात छोटे राज्यों का वर्णन मिलता है—यवद्वीपं सप्तराज्योपशोभितम्। यदि उन द्वीपों के निवासियों के नामों पर ध्यान दिया जाय तो सारी बातें स्पष्ट हो जाती हैं और भारत का प्रभाव वहाँ ज्ञात होता है। बालि द्वीप के रहनेवाले कलिंग और पांडिय नाम से पुकारे जाते थे। यह नाम संकेत करता है कि भारत के विभिन्न प्रांत से लोग वहाँ जाकर बस गए। डा० कुमार स्वामी का मत है कि जावा के निवासी दक्षिण भारत से गए थे।

भारत के उपनिवेश तथा सभ्यता के प्रसार के दो मुख्य कारण थे। पहला कारण यह था कि यहाँ के राजाओं ने धर्मविजयी भावना को लेकर वृहत्तर भारत में अपने दूत भेजे। उनके दूतों ने आर्य धर्म का विस्तार किया और उनको अधीनस्थ शासक बनाया। अशोक मौर्य ने बौद्ध धर्म को फैलाने के लिए एशिया और योरप के विभिन्न देशों में धर्म-प्रचारक भेजा। गुप्त काल में सम्राट् समुद्रगुप्त ने अपनी विजययात्रा में द्वीपों के शासकों से कर ग्रहण किया। उन लोगों ने बहुत-सा द्रव्य भेंट म दिया और वे राजाज्ञा को पालन करने के लिए तैयार हो गए। दूसरा कारण यह था कि भारतीय अपने व्यापार को सर्वत्र फैलाना चाहते थे। अतएव वे द्वीपों में भी गए और आर्थिक समस्या के साथ-साथ उन्होंने यहाँ के रीति-रस्म को भी वहाँ प्रचलित किया। व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित होने पर लोगों में विचार-विनिमय होने लगा। यही भावना बढ़ते बढ़ते संस्कृति के आदान-प्रदान में परिवर्तित हो गयी। बौद्ध जातक ग्रंथों में भारत और द्वीप समूहों के व्यापार का वर्णन मिलता है। जलमार्ग इन द्वीपों से होकर चीन तक जाया करता था। यहाँ के सामान के बदले में चीन से रेशम आया करता था जिसका वर्णन महा-कवि कालिदास के ग्रंथों (कुमारसंभव, शकुंतला) में पाया जाता है

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

—चीनां शुकमिव केतोः प्रतिवातं नीयमानस्य। व्यापार के साथ भारतीयों ने द्वीपों को अपना उपनिवेश बना लिया। हालेभी ने इस बात का समर्थन किया है। ईसा की तीसरी सदी में उत्तरी भारत में चम्पा से एक राजा आया था। इसी समय के करीब द्वीपों में भारतवासी रहने लगे और उपनिवेश का प्रारम्भ हुआ। चम्पा के लेखों में भारतीय उपनिवेश का उल्लेख पाया जाता है। जावा के इतिहास से पता चलता है कि वहाँ छठीं सदी में गुजरात से एक राजकुमार पाँच हजार आदमियों के साथ गया और बस गया। इसी प्रकार भारतीयों ने जावा, चम्पा, कम्वोडिया आदि देशों में पहली सदी से उपनिवेश बना लिया था। दो सौ वर्षों के बाद वहाँ एक हिन्दू राज्य स्थापित हो गया।

भारतीय उपनिवेश का सबसे प्रबल प्रमाण यह है कि वहाँ के शासक तथा नगरों के नाम भारतीय ढंग पर रक्खे गये थे। राजाओं के नाम के साथ 'वर्मा' तथा नगरों के साथ 'पुर' शब्द जुड़े हैं। पाँचवीं सदी में सुमात्रा, चम्पा और कम्बोडिया आदि के राजा भद्र वर्मा, महेन्द्र वर्मा आदि के नाम से विख्यात थे। थाईलैण्ड (स्याम) के राजाओं ने अपना नाम राम और राजधानी का नाम अयोध्या रक्खा। इस प्रकार जयादित्यपुर, श्रेष्ठपुर आदि नाम मिलते हैं।

भारतीय लोगों ने उन द्वीपों में अपना उपनिवेश ही नहीं बनाया वरन् भारतीय रीति और साहित्य का भी प्रचार किया। देववाणी संस्कृत का पठन-पाठन वहां प्रारम्भ हो गया। देवपूजा, दान व कीर्तन आदि धार्मिक कार्य संस्कृत में होने लगे। पाँचवीं सदी के आसपास कम्बोडिया, चम्पा, जावा तथा बाली द्वीपों में जितने लेख मिले ह वे सब संस्कृत में लिखे हुए हैं। लेखों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि संस्कृत साहित्य (काव्य, नाटक, दर्शन) तथा वेदविषयक बातों का वर्णन भारतीय ढंग पर कराया जाता था। चम्पा का शासक भद्र वर्मा चारों वेद, षडदर्शन, बौद्ध साहित्य, व्याकरण तथा कल्प आदि शास्त्रों का प्रकाण्ड विद्वान था। डाक्टर मजूमदार ने अपनी पुस्तक में इस बात को

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सप्रमाण सिद्ध किया है कि वेद, दर्शन, बौद्ध दर्शन, व्याकरण, स्मृति, पुराण, रामायण तथा महाभारत का पठन-पाठन द्वीपों की जनता भारतीय ढंग से करती थी। वहाँ के पूजागृहों में रामायण तथा महाभारत सम्बन्धी चित्र खिंचे मिलते हैं। इससे प्रकट होता है कि वहाँ पर भारत के धार्मिक ग्रंथों का प्रचार था।

उपनिवेशों में भारतीयों के निवास करने के कारण वहाँ के रहनेवालों ने भारतीय सामाजिक नियम तथा रीति-रिवाज का अनुकरण किया। चम्पा के लेखों से मालूम पड़ता है कि वहां समाज को चार वर्णों में बाँटा गया था। वे चारों अपना अपना कार्य करते थे और परस्पर प्रेममय सम्बन्ध रखते थे। ब्राह्मण क्षत्रिय में विवाह होने के कारण ब्रह्म-क्षत्रिय नामक जाति पैदा हो गयी थी। भारत के ऐसे वस्त्र और आभूषण वहाँ के आदि निवासी पहनने लगे। चम्पानिवासी व्यापार में बड़े निपुण थे और उनका मार्ग जावा सुमात्रा तक विस्तृत था। भारतीय शैली पर वे लोग मनोरंजन तथा आमोद प्रमोद के सामान एकत्र करते थे। गाना, बजाना, नाचना तथा नाटकों के देखने से उनमें भारतीयपन टपकता है। उनकी रहन-सहन और धार्मिक कृत्य सभी भारतीय थे। यज्ञ करने की प्रथा तो यहीं से वहाँ गयी। वहाँ के समाज में वही बातें महत्ता रखती थीं जो भारतीय समझी जाती थीं।

उपनिवेशों की शासन-प्रणाली आदर्श तरीके की थी। राजा को ईश्वर का अवतार माना जाता। भारत नरेशों के सदृश वहाँ का शासक सब प्रबंध करता था। राजकर्मचारी उसे प्रत्येक कार्य में सहायता किया करते थे। राजा जिस धर्म को मानता था उसीको प्रजा अपनाती थी। सभ्यता के साथ साथ भारतीय धर्म का वहाँ प्रसार हुआ। वहाँ के निवासियों ने इसका स्वागत किया। इसलिए शैव तथा वैष्णव मतों का समुचित विकास उपनिवेशों में पाया जाता है। डा० कृष्णस्वामी के मतानुसार वैष्णव, शैव तथा बौद्ध धर्मों का फैलाव क्रमशः हुआ। द्वीपों के पाँचवीं सदी के लेखों में वैष्णव मत का वर्णन मिलता है। चम्पा के राजाओं ने

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

विष्णु-मंदिर तैयार कराया जिसमें शेषशायी या गरुड़वाही भगवान की प्रतिमा प्रतिष्ठित की गयी थी। सातवीं सदी का एक लेख मलाया में मिला है जिसमें विष्णुमंदिर का उल्लेख मिलता है। चम्पा के राजा प्रकाशधर्म ने शिव की ताण्डव मूर्त्ति की स्थापना कराई थी। भदेश्वर नाथ शिवलिंग की मूर्त्ति प्रतिष्ठित की गयी। शायद गुप्त काल में उपनिवेशों में फैलाव के कारण भागवत धर्म वहाँ पहुँच गया। इस तरह भारत का सम्बन्ध उपनिवेशों से घनिष्ठ होता गया। ब्राह्मण धर्मों के बाद बौद्ध धर्म का प्रचार उपनिवेशों में हुआ। तिब्बती ऐतिहासिक तारानाथ ने लिखा है कि वसुबन्धु के शिष्यों ने इन्डोचीन में महायान मत का प्रसार किया। वहाँ पर प्रारम्भ में हीनयान का प्रचार था। सातवीं सदी के यात्री इत्सिंग ने सुमात्रा में बौद्ध धर्म के प्रचार का वर्णन किया है। वहाँ भिक्षुगण भारतीय ढंग से रहते तथा विद्या का अध्ययन करते थे। जावा में एक विशाल मंदिर, वारोवुदुर, का अवशेष मिलता है। उसके चित्रों से ज्ञात होता है कि द्वीपों में बौद्धधर्म को प्रधान स्थान प्राप्त था। जावा से भी लोग विद्या पढ़ने भारतवर्ष में आया करते थे। वहां के राजा बलपुत्रदेव ने नालंदा महाविहार में एक स्थान बनवाया था। उसने अपने मित्र पाल नरेश देवपाल से उस स्थान के रक्षार्थ पाँच गाँव दान में दिलवाये थे और उसकी कमी दूसरे प्रकार से पूरी कर दी थी। उपनिवेशों में भारतीयों से प्रभावित होकर या अन्तर्राष्ट्रीय यश-प्राप्ति के लिए जावा के राजा ने ऐसा किया होगा।

उपनिवेशों में ऊपरी बातों पर विचार के बाद यदि कला पर ध्यान दिया जाय तो साफ़ तौर से मालूम पड़ता है कि भारतीय शैली का कितना गहरा प्रभाव था। चम्पा तथा कम्बोडिया में गुप्त कला का अनुकरण कर मंदिर तैयार किए गए। उनकी बनावट पर भारत की छाप है। ये मंदिर आर्य नागर शैली के शिखरयुक्त निर्मित किए गए थे। मंदिरों की खुदाई गुप्त तक्षण कला से मिलती-जुलती है। उनकी चौखटों में अनन्तशायी विष्णु व मकर की मूर्तियाँ बनी हैं। भारतीय

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ढंग की उष्णीस तथा वस्त्रधारी मूर्त्तियाँ मिलती हैं। कम्बोडिया और चम्पा में ऐसे अनेक मंदिर पाए जाते हैं। चम्पा की कला भारतीय है। वह स्वयं उत्पन्न नहीं हुई पर भारत से ली गयी। जावा तथा सुमात्रा की कला में भी भारतीयपन है। जावा के मंदिर चालुक्य तथा पल्लव प्रणाली पर तैयार मिलते हैं। उड़ीसा के भुवनेश्वर मंदिर की तरह जावा के मंदिरों में शिखा व आमलक का प्रयोग किया गया है। राम-कृष्ण-सम्बन्धी चित्र वहाँ की मिट्टी की चीजों पर मिलते हैं। लोगों का ख्याल है कि बंगाल से होकर भारतीय कला का फैलाव उपनिवेशों में हुआ।

भारतीयता की छाप उपनिवेशों में सर्वत्र पायी जाती है। साहित्य के अतिरिक्त लिपि पर भी दक्षिण भारत का प्रभाव मालूम पड़ता है। संस्कृत का पहले बड़ा सम्मान था। अतएव सब लेख संस्कृत में पाए जाते हैं। भारत में ब्राह्मण धर्म के पुनरुद्धार से उपनिवेश में भी संस्कृत का फैलाव हो गया। इस प्रकार भारत से प्रत्येक बात धीरे धीरे उपनिवेशों में फैलती गयी। भारतीय सभ्यता के प्रसार अथवा भ्रमण की एक सुन्दर कहानी है जिसका थोड़ा सा दिग्दर्शन ऊपर कराया गया है। भारत से पूर्वी द्वीप-समह समीप होने के कारण भारतीय सभ्यता का प्रधान केन्द्र बन गया। उन स्थानों में आवागमन जारी रहा। दूर के स्थान भी इस प्रभाव से बचे न रहे। चीन, जापान में भी धर्म प्रचारक गए जिनके साथ सभ्यता का श्रोत वहता गया। एशिया के पश्चिमी भाग—तिब्बत, अफगा-निस्तान, सेन्ट्रल एशिया भी इससे वचे न रहे। चूंकि भारत का प्राचीन व्यापार स्थल मार्ग से योरप जाता रहा अतएव वहाँ के निवासी भारतीय संस्कृति से पूर्ण रूप से परिचित थे। मार्गदर्शक की आवश्यकता थी। मिशनरी भाव को लेकर यहाँ से लोग गए और उनके सामने अपनी बातों को सुनाया। अंत में नियमतः अच्छी बातों पर सब का ध्यान गया और असंस्कृत बातों को छोड़ कर सबों ने भारतीयपन को अपनाया। यही कारण है कि एशिया का कोई भाग भारत के प्रभाव से बचा न रहा। उन देशों के प्राचीन इतिहास प्राप्त लेख तथा खण्डहर इस बात

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

के समर्थक हैं कि पुराने समय में पश्चिमी या पूर्वी एशिया में भारत की सभ्यता ने अपना घर बना लिया था। भारत देवलोक समझा जाता था। ऐसा कौन सा भूभाग था जहाँ से मार्ग की सुगमता होने पर यात्री भारत न आए हों। यात्रियों का भ्रमण-वृत्ताँत कही हुई बातों की पुष्टि करता है। इसका वर्णन अगले अध्याय में किया जायगा। अफ्रिका के समीप मैडागास्कर द्वीप में भारतीय सिक्के मिले हैं जिनसे प्रतीत होता है कि भारत से लोग वहाँ गए थे। मेक्सिको (उत्तरी अमेरिका) की खुदाई में हिन्दू मूर्त्तियां मिली हैं। इसे देखकर सबको आश्चर्य होता है कि सुदूर देश में कैसे हिन्दू मंदिर बने थे। इसका उत्तर यही हो सकता है कि हिन्दू सभ्यता का वहाँ विस्तार था। तभी मंदिर बनाए गए होंगे।

इस प्रकार एशिरिया, बेबिलोनियाँ तथा मिश्र देश की सभ्यता से तुलना करने पर यह कहा जा सकता है कि भारत की सभ्यता ईसा पूर्व पाँच हजार वर्ष पहले से चली आ रही है। दुनियाँ में इससे अधिक सभ्य देश कोई न था।

भारत की महत्ता

भारतवर्ष की महत्ता के विषय में जितना कहा जाय सब थोड़ा होगा। पिछले अध्यायों में जितनी बातों पर प्रकाश डाला गया है उन्हीं के बारे में अधिक बातें कही जा सकती हैं। पर स्थानाभाव के कारण संक्षेप विवरण से ही संतोष करना पड़ता है। यहाँ पर विदेशी यात्रियों द्वारा कथित भारतीय गौरव-विषयक वर्णन का दिग्दर्शन कराया जायगा। भारत सदा से सब देशों का सिरमौर रहा है। इसे देखने के लिए सदा लोग तरसा करते थे। विदेश से यात्री-गण किसी न किसी प्रकार सदा आते रहे। पहले कहा जा चुका है कि ईसा पूर्व शताब्दियों में बौद्ध धर्म का प्रसार था। अतएव भारत से धर्मप्रचारक

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अन्य देशों में जाते रहे। भारतीय व्यापार के कारण भी लोगों को यहाँ की बातें ज्ञात हो गयी थीं। सर्वप्रथम सिकन्दर महान का आक्रमण भारत पर हुआ जिसका ऐतिहासिक महत्त्व था। यों तो ईरान के राजा चढ़ाई करते रहे परन्तु यूनानी सिकन्दर का ही प्रभाव रह गया। उसके साथ तथा बाद यूनानी यात्री आते रहे जिन्होंने भारत का वर्णन किया है। मेगस्थनीज सबसे पुराना यात्री माना जाता है। उसके पूर्व हेरोडोटस नामक यूनानी इतिहासज्ञ भारत में आया था। उसका वर्णन कही हुई बातों पर अवलम्बित होने से अनुभव तथा सचाई से दूर है। जो कुछ भी हो परन्तु हेरोडोटस का विवरण काफी रोचक तथा विस्तृत है। मेगस्थनीज ने 'इंडिका' नाम की पुस्तक लिखी जो आजकल उपलब्ध नहीं होती। उसकी कही हुई बातें यत्र-यत्र उस देश के लेखकों ने उल्लिखित की हैं। वह सीरिया दरबार का राजदूत बना कर पाटलिपुत्र की राजसभा में भेजा गया था। वह राजधानी में रहा। सभा में बैठता था। सब लोगों के सम्पर्क में था। अतएव उसके कथन का आधार अपना अनुभव और देखी हुई बात है। स्ट्रेबो, प्लीनि तथा एरियन के लेखों से मेगस्थनीज के भारतीय वर्णन का पता चलता है। इन तीनों यात्रियों ने भारतवर्ष का वर्णन सुन्दर ढंग से किया है।

समाज में राजा तथा प्रजा का पृथक पृथक स्थान था। दोनों स्वतंत्रतापर्वक कार्य करते थे। सामाजिक कार्य में राजा हस्तक्षेप नहीं करता था। मेगस्थनीज ने लिखा है कि भारत में राजाओं ने शासन किया तथा वे नष्ट भी हो गए परन्तु समाज में कोई परिवर्तन न हुआ। युद्ध के समय भी शांतिमय वातावरण रहा करता था। समाज वर्णाश्रम धर्म के अनुसार चार वर्णों में विभक्त किया गया था। परन्तु मेगस्थनीज ने वर्ण के कार्यानुसार सात जातियों का वर्णन किया है। ब्राह्मण अधिकतर दार्शनिक हुआ करते थे। भविष्यवाणी करते थे। यदि तीन बार उनके कथन असत्य हो जाते तो जीवन भर वे चुप रह जाते। दार्शनिक लोग राजकीय कर से मुक्त कर दिए जाते थे। इस कथन

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

की पुष्टि अशोक के लेख तथा कौटिल्य के अर्थशास्त्र से की जाती है जिसमें श्रामण (यति-ब्राह्मण) को लगान से रहित भूमिदान दी जाती थी। दूसरी जाति गृहस्थ की थी जो ेती और व्यापार आदि किया करते थे। सम्भवतः मनु-कथित वैश्य जाति इससे मिलती-जुलती थी। शिकार करनेवाले तीसरी जाति में रक्खे गए थे। एरियन ने गड़ेरिये से उनकी समता की है। शूद्र चौथे प्रकार की जाति थे। अन्य यूनानी लेखकों ने उस जाति को कारीगर के नाम से उल्लिखित किया है। उन सब का काम शारीरिक परिश्रम तथा सेवा करना था। योद्धा की जाति एक पृथक जाति के नाम से उल्लिखित मिलती है। सच्चे क्षत्रिय इसमें सम्मिलित किये गए थे। जो लोग राजा के लिए भेदिया का काम किया करते थे उन्हें .छठीं जाति में माना जाता था। अंतिम जाति (सातवीं) दरबार के सभासदों तथा सलाहकारों की मानी जाती थी। इस प्रकार मेगस्थनीज ने समाज को सात भागों में विभाजित किया था। शास्त्रीय विवाह तथा सती की प्रथा समाज में अच्छी प्रकार प्रचलित थी। भारत में लोग समय समय पर त्यौहार मनाया करते थे। वर्ष में एक वार राजसभा में उत्सव मनाया जाता था। परन्तु सर्वसाधारण के लिए उसमें सम्मिलित होना अनिवार्य न था। अशोक के लेखों में भी ऐसे उत्सवों का वर्णन पाया जाता है। यूनानी लोगों के कथनानुसार समाज में मनुष्यों का वस्त्र तथा भोजन समय तथा पद के अनुसार परिवर्तित होता रहता था। भारतीय नर-नारी आभूषणप्रिय थे तथा कामदार वस्त्र पहनने में आनन्द मनाते थे। फूल का सदा उपयोग किया जाता था। नौकर छत्र लिए स्वामी के पीछे चला करता था। स्ट्रेबो ने भी ऐसा ही वर्णन किया है। भारतीय कला में आकृतियों को देखा जाय तो उसी प्रकार के वस्त्राभूषण दिखलाई पड़ते हैं। उनके कथनानुसार भारत में ऊँचे विचार तथा साधारण जीवन (plain living and high thinking) ही सर्वत्र दिखलाई पड़ता था।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

यूनानी लोगों ने भारत की आर्थिक अवस्था का भी वर्णन किया है।

कारोवार में—जैसा उनका मत है—भारत के लोग कम निपुण न थे। सबसे प्रधान बात यह थी कि भारतवर्ष अपने में स्वतः सन्तुष्ट था। सब प्रकार की आवश्यक चीजें पैदा की जातीं तथा प्रयोग में लायी जाती थीं। यद्यपि खेती का विस्तृत विवरण यूनानी इतिहासकारों ने नहीं किया है तथापि आर्थिक जीवन में भारतीय परिश्रम से अपनी आवश्यकता की पूर्ति कर लेते थे। जनता में कुछ ऐसे लोग अवश्य थे जो धन लगा कर बड़े व्यापार को खड़ा करते और उससे आवश्यक सामग्री पैदा की जाती थी। सिक्के प्रचलित थे। रुपया उधार देने की प्रथा थी। ईसा पूर्व सदियों में भारत में धन का प्रयोग किया जाता था। पैदावार, प्रयोग, बँटवारा और धन का रद्दोवदल सदा हुआ करता था। खेती का वर्णन खूब किया गया है। मेगस्थनीज ने गलती से लिख दिया कि जमीन स्वामी की थी और किसान एक चौथाई मालिक को दिया करता था। स्ट्रैवो ने खेत में दो फसलों के विषय में अन्न के नाम तक उल्लेख किये ह। जमीन की उपज अच्छी थी। सब लोगों ने लिखा है कि मिट्टी तो उर्वरा थी ही परन्तु नदी के कारण पैदावार अधिक हुआ करती। यद्यपि अधिक जनता खेती में व्यस्त रहती परन्तु कारोबार को लोगों ने भुला न दिया था। आवश्यक चीजें पैदा की जाती थीं। सोना, चाँदी, लोहा आदि धातु खान से निकाली जाती थीं। सांसारिक बातों के विवरण पर यदि ध्यान दिया जाय तो मालूम होगा कि यूनान के सारे यात्रियों तथा इतिहासज्ञों ने एक सा वर्णन नहीं किया है। परन्तु धार्मिक तथा दार्शनिक मामलों में सब एक ही मत हैं। धर्म में अन्धविश्वास का नाम तक न था। मेगस्थनीज ने लिखा है कि भारत के वेदान्ती संसार में एकमात्र सत्य "ब्रह्म" को मानते थे। संसार माया है। उसे मृग-तृष्णा कहा गया है। निर्गुण के अतिरिक्त सगुण उपासक भी लोग थे। मथुरा वृन्दावन में कृष्ण भगवान की प्रतिमा की पूजा होती थी। देव-ताओं के बारे में यूनानियों का कोई विशेष विवरण नहीं मिलता। उन लोगों ने हिन्दू, जैन तथा बौद्ध में अन्तर न पाया। एरियन आदि ने

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

साधुओं का वर्णन किया है जिसमें कुछ हठयोग के उपासक थे। कर्म-वाद तथा आवागमन के दार्शनिक सिद्धान्तों को लोग मानते थे। तीर्थयात्रा की महत्ता समझी जाती थी। ब्रह्मचारियों की शिक्षा का उचित प्रबंध था। यूनानी लोगों ने भारत के नगरों का भी वर्णन किया है। पाटलिपुत्र का वर्णन विशेष रूप से मिलता है। यहाँ राजकीय महल सुन्दर नक्काशीदार लकड़ी के बने थे। अन्य अन्य धातुओं की वस्तुओं पर भी कारीगरी के काम उल्लिखित मिलते हैं। इससे यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि भारतीय कला ग्रीक-कला के प्रभाव से बची रही। यहाँ अत्यन्त प्राचीन काल से ही अपनी कला थी जिसका विकाश धीरे धीरे होता रहा।

यूनानी ऐतिहासिकों की तरह एशिया के पूर्वी भाग से भी यात्री भारत-भ्रमण के लिए आते रहे। ईसा की चौथी शताब्दी में चीनी फाहियान भी यहाँ आया। हिन्दुस्तान में गन्धार, तक्षशिला, पेशावर, पाटलिपुत्र, काशी, अंग होते ताम्रलिप्ति गया। वहाँ से जहाज़ पर बैठ कर लंकाद्वीप होते अपने देश को वापस चला गया। उसके कथनानुसार अधिकतर जनता बुद्धधर्म को माननेवाली थी। मध्यदेश की जलवायु अत्यन्त स्वास्थ्यवर्द्धक थी। जनता का प्रधान पेशा कृषि था। उनके चलने-फिरने में कोई बाधा न थी। राजशासन आदर्श तौर पर चलता था। राज्य में दण्डविधान का नाम न था। किसीको शारीरिक दण्ड नहीं दिया जाता था। अपराधी कम संख्या में मिलते थे। मनुष्य किसी जीवधारी की हत्या न करता था। शराब पीना, लहसुन-पियाज खाना बुरा समझा जाता था। चाण्डाल इससे अलग थे। खुले बाजार में शराब की दूकान न थी। उस समय बाजार में कौड़ियों का भी प्रयोग किया जाता था। इसका यह अर्थ न समझना चाहिए कि फाहियान के समय में भारत में सिक्कों का प्रचार न था। उसके समय में पाटलिपुत्र में गुप्त नरेश शासन करते थे। उनका समय इतिहास में 'स्वर्णीय' के नाम से प्रसिद्ध है। अतएव वह समय सुख तथा सम्पत्ति का खजाना

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

था। कोशल, कपिलवस्तु तथा वैशाली में स्वतंत्र शासक राज्य करते थे। लोग सुखी थे, वैभवपूर्ण थे। बुद्ध धर्म का प्रचार था। विहार तथा मठ सर्वत्र पाए जाते थे। उनमें नाना प्रकार से उत्सव मनाए जाते थे। पाटलिपुत्र में धर्मार्थ औषधालय का सुन्दर वर्णन फाहियान ने किया है। प्रत्यक रोग के रोगी दूर दूर देशों से यहाँ आया करते थे। रोग से मुक्त होकर सब लोग अपने अपने देश को वापस जाते थे। जनता में स्वतंत्र रूप से कार्य करने की चलन थी। जहां जहां फाहियान गया वहाँ किसी प्रकार के डाकू या चोर उसे न मिले। शांति के वातावरण में अपना समय बिता कर वह स्वदेश को लौटा।

उसके बाद उसी देश से छठीं सदी में ह्वेनसांग नाम का यात्री भारत आया। सबसे बड़ी बात जो फाहियान तथा ह्वेनसांग के विवरण में विभिन्नता पैदा करती है वह भारत की धार्मिक अवस्था है। जिन स्थानों पर फाहियान ने बुद्ध धर्म की प्रधानता पायी, संघाराम व मठ भरे थे वहाँ ह्वेनसांग ने ब्राह्मण धर्म का उदय पाया। मठ आदि नष्ट हो गए थे। उनके स्थान पर मन्दिर बन गए थे। गंधार देश में मंदिर ही मंदिर दिखलाई पड़ते थे। उसके समय में मालवा में विक्रमादित्य नाम का एक शक्तिशाली राजा था। वह ब्राह्मण धर्म का माननेवाला था। उस समय बसुबन्धु नामक एक प्रसिद्ध विद्वान था। ह्वेनसांग स्थल के मार्ग से आया अतः उसने काबुल, सिन्ध तथा कश्मीर का सुन्दर वर्णन किया है। उसके वर्णन के मुताबिक मार्ग में स्थित मथुरा का शहर सैकड़ों मील लम्बा तथा कई मील चौड़ा था। जमीन उपजाऊ थी। लोगों के कोमल स्वभाव थे। स्वयं पढ़े-लिखे थे और विद्वानों का आदर करते थे। पुष्प तथा धूप से पूजा किया करते थे। गंगा-यमुना के दोआबा की भूमि हजारों मील में हरी-भरी थी। यात्री गंगा को देख कर स्तब्ध हो जाते थे। हरिद्वार गंगा का द्वार माना जाता था। यहाँ अनेक हिन्दू मन्दिर थे और लोग तीर्थयात्रा करने आया करते थे। कान्यकुब्ज नगर में ऊँची ऊँची अट्टालिकाएं वर्तमान थीं। नदी, तालाब,

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वाटिका तथा सुन्दर पुष्प नगर की शोभा बढ़ाते थे। जनता सुख तथा संतोष के साथ समय विताती थी। जलवायु अनुकूल थी। पुष्प तथा फल अनगिनत मात्रा में पैदा होते थे। लोग चमकते हुए आभूषण के साथ गहनने पहने के पक्ष में थे। बुद्ध तथा हिन्दू धर्म का समान रूप से सम्मान किया जाता था। उसने वर्णन किया है कि कान्यकुब्ज (कनौज) का राजा (हर्षवर्द्धन) बौद्ध धर्म की ओर झुका था। उसने पशुहत्या की मनाही कर दी। स्तूप तथा औषधालय बनवाया। राजमार्ग तैयार कराया। प्रत्येक पांचवें वर्ष वह एक धार्मिक सभा बुलाया करता था। जो कुछ उसके पास रहता, सब कुछ दान में दे देता। प्रत्येक प्रकार के श्रामण तथा ब्राह्मण वहां एकत्रित होते थे। यद्यपि यह धार्मिक सभा थी पर राजाज्ञा के कारण विशाल रूप धारण कर लेती। जो कोई अतिथि आता सभी को भोजन देता। विद्वान दूर-दूर से राजा हर्षवर्धन की उस सभा में आया करते थे। कुछ समय के बाद विद्वन्मण्डली एकत्रित होकर शास्त्रीय बातों पर वादविवाद किया करती थी। उसके देखने से भारत के वैभव का अनुमान किया जा सकता था। सारे छोटे नरेश हर्ष की संरक्षकता में शासन करते थे। बुद्ध धर्म में मर्त्तिपूजा की भावना आ गयी थी। बुद्ध की प्रतिमा की पूजा की जाती थी। इस प्रकार का उत्सव प्रयाग में मनाया जाता था। इतना होने पर भी कट्टर हिन्दू लोगों का ही बोलबाला था। प्रयाग में अक्षयवट का भी वर्णन ह्वेनसांग ने किया है। काशी हिन्दू देवताओं के संदिरों से भरा था। हजारों की संख्या में देवालय वर्तमान थे।

अनेक स्थानों का वर्णन करते हुए ह्वेनसांग ने नालंदा महाविहार का वर्णन किया है जहाँ हजारों की संख्या में विद्यार्थी विद्याभ्यास करते थे। इसको नालंदा विश्वविद्यालय का नाम दिया गया था। पूर्वी भाग में बुद्ध धर्म की हानि तथा हिन्दू धर्म का उत्थान हो रहा था। वह भाग स्वतंत्र रियासतों में बँटा हुआ था। वहाँ के राजा प्राचीन ढंग से शासन करते थे। जनता में आचरणवाले, लम्बे कद, वीर्यवान,

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

शूर-वीर योद्धा भरे पड़े थे। ह्वेनसांग दक्षिणी भाग में भी आन्ध्र तथा उज्जैन की ओर गया। वहाँ हिन्दू धर्म प्रधान रूप में था। उर्वरा भूमि, सुफला तथा जंगल-प्रधान देश था। लोग विद्वान थे। राजा क्षत्रिय था। प्रजा राजा की आज्ञा पालन करती थी। चार भागों में शासन विभाजित था। सब के पास अपना सामान रहता और सब सुखपूर्वक जीवन बिताया करते। भारत के पश्चिमी भाग में भ्रमण करता हुआ ह्वेनसांग चीन को लौट गया।

उपर्युक्त पृष्ठों के विवरण के बाद कुछ कहना शेष नहीं रह जाता। भारत ऐसे विचित्र देश में सदा से यात्री आते रहे और रहेंगे। परन्तु प्राचीन समय में विदेशी यात्रा करनेवालों के वर्णन से भारत की महत्ता का कुछ अनुमान किया जा सकता है।

SRI JAGADGURU VISHWARADHYA
JNANA SIMHASAN JNANAMANDIR
LIBRARY.
Jangamwadi Math, VARANASI,
Acc. No. ....
246.

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

लेखक की अन्य रचनाएँ—

(१) गुप्त साम्राज्य का इतिहास
भा० १ व २ (इंडियन प्रेस, प्रयाग)

(२) विजयनगर साम्राज्य का इतिहास
(सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली)

(३) भारत के प्राचीन ग्राम
(शारदा मंदिर, काशी)

(४) भारतीय संस्कृति
(भारत पब्लि०

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri